www.thearyasamaj.org

VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2015 TO 31.12.2017)

६५, ९ दिसम्बर – 2016

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

www.thearyasamaj.org

संस्थापक–सम्पादक :

स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:

प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

उप–सम्पादक :

डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

www.thearyasamaj.org

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ० महावीर प्रसाद	बौद्धधर्म में मानववाद की अवधारणा	लेख	२
श्री देवनारायण भारद्वाज	ऋषिका सूर्यासावित्री द्वारा दर्शित षट्क-सम्पदा	लेख	६
श्रीमती उर्मि कृष्ण	अंधकार की किरण	लेख	११
डॉ. शिवाधार चौबे	मरुभूमि की मन्दाकिनी मीरा	लेख	१९
डॉ० रमाकान्त	संत रविदास की लोक-चेतना	लेख	२१
डॉ. मुकेश कुमार	मातृदेवो भव	लेख	२५
डॉ० सुधांशु कुमार षडङ्गी	तन्त्रागमीय तत्त्वसृष्टि में शिव एवं शक्ति	लेख	२८
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल	तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी सन्त कबीर (दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में)	लेख	३३
सुश्री प्रियंका विजय	बुद्धचरितम् महाकाव्य का साहित्यिक अनुशीलन	लेख	४२
श्री तरसेम कुमार शर्मा	आयुर्वेदीय दृष्टि में रोगों के कारण	लेख	४६
डॉ० दिनेश कुमार	भारतीय संस्कृति और संगीत	लेख	४८
	संस्थान-समाचार		५०
	विविध-समाचार		५१

www.thearyasamaj.org

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६५ होश्यारपुर, मार्गशीर्ष २०७३; दिसम्बर २०१६ संख्या ९

इहैव हवमायात म इह,
संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः।
इहैतु सर्वो यः पशुर्,
अस्मिन् तिष्ठतु या रयिः।।
(अथर्व. १.१५.२)

हे सांझे स्तवन को ग्रहण करने वाले देवो! (हम आपका आह्वान कर रहे हैं। आप) (इहैव आयात) यहां पधारें। (और इस) (हवम्) आह्वान को (सुनें) और इस (यजमान) की (वर्धयता) वृद्धि करें। जो (भी सुख-साधना रूप) पशुवर्ग (और) (रयिः) धनसंपत्ति (हो सकती है, वह) (सर्वः) सब इस (यजमान) के यहां (एतु) पहुंचे (और) (तिष्ठतु) स्थिर रहे।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

www.thearyasamaj.org

बौद्धधर्म में मानववाद की अवधारणा

– डॉ० महावीर प्रसाद

बुद्ध ने बौद्धधर्म एवं दर्शन के जिन विभिन्न सिद्धान्तों तथा आदर्शों का विश्लेषण और विस्तार किया है, भले ही वे साधारण हों अथवा गूढ़, प्रत्येक में सारभूत स्थान 'मनुष्य' का ही रहा अर्थात् तथागत बुद्ध ने क्रोध, दु:ख, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, तृष्णा, शत्रुता, मायाजाल, लोभ, दुष्टता, झूठ, व्यभिचार, हिंसा, चोरी आदि में फंसे आदमी को इन्सान अथवा उत्कृष्ट मानव की स्थिति में लाने के लिए अनेक सरल तथा कठिन उपाय बतलाए। वह चाहते थे कि मनुष्य, बहुत-सी बुराइयों में लिप्त भले ही हो, पर वह अच्छा, स्वच्छ, सुन्दर, कुशल, नैतिक बनने की क्षमता रखता है बशर्ते कि वह सम्यक् मार्ग का अनुसरण करे और उन मूल्यों को अर्जित करे जिनसे मानव-समाज में आदमी-आदमी के बीच सम्यक् सम्बन्धों की स्थापना संभव हो सके।

बौद्धधर्म के आदर्श- पंचशील, आर्यसत्य, पारमिताएं, अष्टांग-मार्ग, सभी मनुष्य को असली आदमी बनाते हैं, पर यह तभी संभव है जब वह उनको व्यवहार में लावे। प्रतीत्यसमुत्पाद के दर्शन की समझ एवं व्यवहार मनुष्य को अनेक दु:खों से बचा सकते हैं, क्योंकि इस सिद्धान्त में जो चीज अन्तर्भूत है, वह है ऐसा होने पर ऐसा होता है, ऐसा न होने पर, ऐसा नहीं होता। यही कारण-कार्य का सिद्धान्त है जिसे समझ कर अनेक व्याधियों से छुटकारा मिल सकता है। बुद्ध ने मनुष्य को अधिक तात्विक भ्रमों, झमेलों तथा झंझटों में नहीं डाला, उसके मत से आदमी इसी धरती पर रह कर एक अच्छा इन्सान बन सकता है, यदि वह 'अत्त दीपो भव' और 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय' के दोनों आदर्शों का ईमानदारी से अनुसरण करे। भगवान् बुद्ध के मन प्रतिपल यही धारणा बनी रहती है कि मनुष्य इस जन्म में कैसे एक सच्चा मानव बन सकता है और वे उसी का उपदेश जन सामान्य के लिए दिया करते थे। यही कारण है कि मैंने बुद्ध के वचनों, आदर्शों और सिद्धान्तों में से उनके 'उत्कृष्ट मानववाद' की धारणा या प्रत्यय का अवतरण किया है, जो मुझे विश्वास है, बौद्ध उपासकों, भिक्षुओं और

www.thearyasamaj.org

उन सभी को मान्य होगा जो तथागत की थोड़ी-सी भी जानकारी रखते हैं। यह निर्विवाद है कि बौद्धमत स्वयं में एक मानववादी अभिव्यक्ति है, क्योंकि मनुष्य को उत्कृष्ट प्राणी बनाने के सिवाय उसमें अन्य कुछ नहीं है। बुद्धिज्म को मानववादी तत्वों, विचारों एवं सिद्धान्तों को डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर ने त्रिपिटक के अध्ययन से इस प्रकार अवतरण किया है-

१. मुक्त समाज के लिए धर्म आवश्यक है।

२. प्रत्येक धर्म अंगीकार करने योग्य नहीं होता।

३. धर्म का सम्बन्ध जीवन के तथ्यों व वास्तविकता से होना चाहिए, ईश्वर, परमात्मा, स्वर्ग या पृथ्वी के सम्बन्ध में सिद्धान्तों तथा अनुमानमात्र निराधार कल्पना से नहीं होना चाहिए।

४. ईश्वर को धर्म का केन्द्र बनाना ठीक नहीं।

५. आत्मा की मुक्ति या मोक्ष को धर्म का केन्द्र बनाना भी उचित नहीं।

६. पशुबलि को धर्म का केन्द्र बनाना सर्वथा अनुचित है।

७. वास्तविक धर्म का वास मनुष्य के हृदय में होता है, शास्त्रों में नहीं।

८. धर्म के केन्द्र मनुष्य तथा नैतिकता होने चाहिएं। यदि नहीं तो धर्म केवलमात्र अंधविश्वास है।

९. नैतिकता के लिए जीवन का आदर्श होना ही पर्याप्त नहीं है। क्योंकि ईश्वर नहीं है, अत: इसे जीवन का नियम या कानून होना चाहिए।

१०. धर्म का कार्य विश्व का पुनर्निर्माण करना तथा उसे प्रसन्न रखना है, उसकी उत्पत्ति या उसके अंत की व्याख्या करना नहीं।

११. संसार में दु:ख स्वार्थों के टकराव के कारण होता है, और इसके समाधान का एकमात्र तरीका अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना है।

१२. संपत्ति के निजी स्वामित्व से अधिकार व शक्ति एक वर्ग के हाथ में आ जाती है और दूसरे वर्ग को दु:ख मिलता है।

१३. समाज के हित के लिए यह आवश्यक है कि इस दु:ख का निरोध इसके कारण का निरोध करके किया जाए।

१४. सभी मानव प्राणी समान हैं।

१५. मनुष्य का मापदण्ड उसका गुण होता है, जन्म नहीं।

१६. जो चीज महत्वपूर्ण है वह है उच्च आदर्श, न कि उच्च कुल में जन्म।

१७. सबके प्रति मैत्री का साहचार्य व भाईचारे का कभी परित्याग नहीं करना चाहिए।

१८. प्रत्येक व्यक्ति को विद्या प्राप्त करने का अधिकार है। मनुष्य को जीवित रहने के

www.thearyasamaj.org

लिए ज्ञान, विद्या की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी भोजन की।

१९. अच्छा आचरण न होना खतरनाक होता है।

२०. कोई भी चीज भ्रमातीत व अचूक तथा सर्वदा बाध्यकारी नहीं होती। प्रत्येक वस्तु छानबीन तथा परिश्रम का विषय नहीं होती है।

२१. कोई वस्तु सुनिश्चित तथा अंतिम नहीं होती।

२२. प्रत्येक वस्तु कारण- कार्य संबंध के नियम के अधीन होती है।

२३. कोई भी वस्तु स्थाई या सनातन नहीं है। प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील होती है।

२४. युद्ध यदि सत्य तथा न्याय के लिए न हो, तो वह अनुचित है।

२५. विजेता के पराजित के प्रति कुछ कर्तव्य होते हैं।

डॉ० अम्बेडकर ने आगे कहा है- 'बुद्ध का तरीका अलग था। उनका तरीका मनुष्य के मन को परिवर्तित करना, उसकी प्रवृत्ति व स्वभाव को परिवर्तित करना था जिससे मनुष्य जो भी करे, वह उसे स्वेच्छा से बल-प्रयोग या बाध्यता के बिना करे। मनुष्य की चित्तवृत्ति व स्वभाव को परिवर्तित करने का उनका मुख्य साधन धम्म था तथा थम्म के विषय में उनके सतत उपदेश थे। बुद्ध का तरीका लोगों को उस कार्य को करने लिए वे जिसे पसंद नहीं करते थे, बाध्य करना नहीं था, चाहे वह उनके लिए अच्छा ही हो। उनकी पद्धति मनुष्यों की चितवृत्ति व स्वभाव को बदलने की थी, ताकि वे उस कार्य को स्वेच्छा से करें, जिसको वे अन्यथा न करते।'

'एक बार अनाथपिंडक उस स्थान पर आया, जहां पर बुद्ध ठहरे हुए थे। वहां आकर उसने उनको प्रणाम किया और एक ओर आासन ग्रहण किया और उनसे पूछा, 'क्या भगवन्, यह बताएंगे कि गृहस्थ के लिए कौन-सी बातें स्वागत योग्य, सुखद तथा स्वीकार्य हैं, परन्तु जिन्हें प्राप्त करना कठिन है।

बुद्ध ने इस प्रश्न को सुनकर कहा- इनमें प्रथम विधिपूर्वक धन अर्जित करना है। दूसरी बात यह देखना है कि आपके संबंधी भी विधिपूर्वक ही धन-संपति अर्जित करें। तीसरी बात है, दीर्घकाल तक जीवित रहो और लंबी आयु प्राप्त करो।

गृहस्थ को इन चार चीजों की प्राप्ति करनी है, जो संसार में स्वागत योग्य, सुखकारक तथा स्वीकार्य है, परन्तु जिन्हें प्राप्त करना कठिन है, चार अवस्थाएं भी हैं जो इनसे पूर्ववर्ती हैं। वे श्रद्धा, शुद्ध आचरण, स्वतंत्रता और बुद्धि।

शुद्ध आचरण दूसरे का जीवन लेने अर्थात् हत्या करने, चोरी करने, व्यभिचार करने, झूठ

www.thearyasamaj.org

बोलने तथा मद्यपान करने से रोकता है।

स्वतंत्रता ऐसे गृहस्थ का गुण होता है जो धनलोलुपता के दोष से मुक्त, उदार, दानशीलता, मुक्तहस्त, दान देकर आनंदित होने वाला और इतना शुद्ध हृदय का हो कि उसे उपहारों का वितरण करने के लिए कहा जा सके।

बुद्धिमान् कौन है?

वह जो यह जानता है कि जिस गृहस्थ के मन में लालच, धन-लोलुपता, द्वेष, आलस्य, उनींदापन, निद्रालुता, अन्यमनस्कता तथा संशय है और जो कार्य करना चाहिए, उसकी उपेक्षा करता है, और ऐसा करने वाला प्रसन्नतर तथा सम्मान से वंचित रहता है।

लालच कृपणता, द्वेष, आलस्य तथा अन्यमनस्कता तथा संशय मन को दूषित करने के कारण उसके लिए कलंक हैं। जो गृहस्थ मन में इन कंलकों से छुटकारा पा लेता है, वह महान् बुद्धि,प्रचुर बुद्धि एवं विवेक स्पष्ट दृष्टि तथा पूर्ण बुद्धि व विवेक प्राप्त कर लेता है।

'अतएव न्यायपूर्ण ढंग से तथा उचित रूप से धन प्राप्त करना, भारी परिश्रम से कमाना, भुजाओं की शक्ति व बल से धन संचित करना, तथा भौहों का पसीना बहाकर परिश्रम से प्राप्त करना, एक महान्? वरदान है। ऐसा गृहस्थ स्वयं को प्रसन्न तथा आनंदित करता है और हमेशा, प्रसन्नता व हर्ष से परिपूर्ण रहता है तथा अपने माता-पिता, पत्नी तथा बच्चों, मालिकों तथा श्रमिकों, मित्रों तथा सहयोगियों, साथियों को भी प्रसन्नता तथा प्रफुल्लता से परिपूर्ण रखता है।'

इन सभी बातों से स्पष्ट है कि बुद्ध का सारा ध्यान इस बात पर अधिक था कि मनुष्यों को पशुओं की भांति नहीं बल्कि भौतिक और आध्यात्मिक रूप में उत्कृष्ट बनाना, जो समाज का नवनिर्माण स्वतंत्रता, समता एवं भ्रातृत्व जैसे मूल्यों के आधार पर करें। ये तीनों मूल्य परस्पर आबद्ध हैं। इनका अनुसरण तभी संभव है, जब मनुष्य बुद्ध के मार्ग का अनुसरण करें। अधिक भौतिक सम्पत्ति संचित करने वाला व्यक्ति धनवान् होता है, जबकि मानवता से ओतप्रोत व्यक्ति श्रेष्ठ एवं शीलवान् होता है। बुद्ध की शिक्षा यही थी कि सभी नर-नारी प्रज्ञावान् बनें, शीलों का व्यवहार करें और समतावादी समाज का निर्माण करें। सभी बुद्धोपदेशित शिक्षाएं उत्कृष्ट मानववाद को निरूपित करती हैं। ऐसी मेरी मान्यता है जिससे सभी न्यायप्रिय एवं शीलवान् व्यक्ति सहमत अवश्य ही होंगे। यह कोई काल्पनिक धारणा नहीं है, बल्कि यथार्थदृष्टि द्वारा प्रतिष्ठापित एक दर्शन है।

अध्यक्ष, दयानन्द वैदिक शोधपीठ, संस्कृत विभाग, दयानन्द महाविद्यालय, अजमेर।

www.thearyasamaj.org

ऋषिका सूर्यासावित्री द्वारा दर्शित षट्क-सम्पदा

– श्री देवनारायण भारद्वाज

हर्ष- विवाद की सामाजिक व्यस्तताओं के कारण लेखनी मौन होकर अचल हो गयी थी, किन्तु आज चल उठी, क्योंकि उसने दूरदर्शन के धार्मिक आस्था के मंच से कथावाचक द्वारा गाये गये इस भक्तिगीत को सुन लिया।

मैय्या करा दे मेरो व्याह
बिरज की छोरी से राधिका गोरी से।
उमर तेरी छोटी है नजर तेरी खोटी है,
कैसे करा दूँ तेरा व्याह,
बिरज की छोरी से राधिका गोरी से।।

भले कथावाचक महोदय ने झूम-झूम कर इसको गाया। जनता ने भी उसी ढंग को अपनाया। कथावाचक का अपने में शुद्ध अन्त:करण से सात्विकभाव था किन्तु श्रोताओं का अन्त:करण मन कुछ और ही दिशा में भटकने लग गया। हो सकता है यह देखने के पश्चात् लेखक द्वारा कुछ लेख लिखने पर उसके प्रति खोटी नजर या छोटी बुद्धि का आरोप लगे किन्तु तथ्य अपने में सही है। जिसके उदाहरण लोक में नित्यप्रति देखने को मिलते हैं।

वेद में मंत्रदृष्टा ऋषियों की जहां एक लम्बी श्रृंखला है, वहीं कतिपय ऋषिकायें भी अपने समुज्वला रूप में दिखाई देती हैं, उन्हीं में से एक है सावित्री सूर्या, जिन्होंने अथर्ववेद काण्ड चौदह के मन्त्रों से विवाह एवं दाम्पतिक जीवन द्वारा परिवार-समाज-राष्ट्र में सात्विकता एवं समुन्नति का सन्देश दिया है। वैदिक विवाह संस्कार में इनके द्वारा दृष्टांकित अनेक मन्त्रों से वर-वधू को प्रेरणा प्रदान की गयी है।

निदर्शन स्वरूप यहां पर छ: मन्त्रों का एक पुष्पगुच्छ प्रस्तुत है। विशेषता यह है कि अथर्ववेद १४.२.५३-५८ के इन छहो मन्त्रों की शब्दावली एक शब्द को छोड़ कर समान है। मन्त्र है-

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन्।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि।।

प्रथम मन्त्र में जहां 'वर्चो' है, वहां आगे के पांच मन्त्रों में क्रमश: 'तेजो-भगो-यशो-पयो एवं रसो' शब्द हैं। इन छहों शब्दों से जो

www.thearyasamaj.org

सोपान बनता है उसका ध्यान इस प्रकार करते हैं। 'वर्च' से प्रकाश व ज्ञान मिले, 'तेज' से पालन-पोषण रक्षा के साधन मिले, 'भग' से कलुष कालिमा रहित धनैश्वर्य मिले, 'यश' से सात्विक सम्पदा को दुरुपयोग से बचाकर सदुपयोग द्वारा मान-बड़ाई मिले, 'पय' से दुग्धवत् श्वेत पोषण का विस्तार मिले और 'रस' से जीवन की नीरसता हटकर रसमयता का स्वाद, प्रीति एवं आनन्द का स्रोत-'रसो वै स:' (तै० उपनिषद्) के सारश्रृंगार स्वरूप परमात्मा का संस्पर्श एवं सान्निध्य मिल जाये। प्रकाश हो उसमें तेज न हो तो उसके टिमटिमाने से क्या लाभ. तेज हो, उससे कुछ भी कमाई हो, किन्तु भग-ऐश्वर्य का सृजन न हो, तो उस तेज का क्या लाभ, धनधान्य हो किन्तु यश न हो तो उस ऐश्वर्य का क्या लाभ, यश हो किन्तु उसमें पय (दुग्ध) की धवलता, प्रवाहकता पोषण व विस्तार न हो तो उस यश का क्या लाभ, पय (दुग्ध) की प्रवाहकता हो, किन्तु उसमें रसमयता, आस्वाद और माधुर्य न हो तो उस पय:प्रवाह का क्या लाभ, रस हो किन्तु उसमें आनन्द का स्रोत 'रसो वै स:' अर्थात् परमेश प्रभु का संदर्श न हो तो उस रस से क्या लाभ?

आनन्द स्रोत बह रहा, पर तू उदास है।
अचरज है जल में रहकर भी मछली को प्यास है।

प्राय: हम योग का प्रयोग जीवात्मा के परमात्मा से जुड़ने के लिए करते हैं, किन्तु योगिराज श्री कृष्ण जी ने श्रीमद् भगवद्गीता (२/५०) में 'योग: कर्मसु कौशलम्' अपने कर्तव्य कर्म में कौशल का नाम ही योग कहा है। इसके लिए 'योगदर्शन' हमें 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:' कहकर चित्त की वृत्तियों को नियन्त्रित करने का निर्देश देता है। आज साधारण दुकानदार भी इलैक्ट्रोनिक तुला पर सामान तोलते हैं, किन्तु न्याय की तुला अब भी दो पलड़ों की तराजू ही मानी जाती है, जो इधर-उधर झुकने के बजाय केन्द्रबिन्दु पर सन्तुलित होने से ही सही न्यायपूर्ण मानी जाती है। तुला के केन्द्रबिन्दु की भांति हमारे सम्पूर्ण जीवन का केन्द्रबिन्दु 'चित्त' है और यह हमारा 'चित्त का प्रसाधनम्-चित्तप्रसादनम्' के बिन्दु पर ठहर जाता है अर्थात् प्रस्तुत अवांछित वृत्तियों से निष्प्रभावी हो जाता है, तभी चित्त मन्त्र में बताये गये रत्नों के प्रवेश से आलोकित होकर मानव-जीवन को सफलता और प्रभुप्रेम की रसमय विमलता प्रदान करता है। समय-समय पर आने वाली चतुर्दिशाओं से चित्त में प्रविष्ट होने वाली वृत्तियों को रोकने के लिये योग दर्शन हमें चार प्रकार के कवच प्रदान करता है। वे हैं 'मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षाणाम्'-

www.thearyasamaj.org

(१) **मैत्री करें ईर्ष्या नहीं**- प्राय: देखा गया कि लोक में सुख, साधन, सद्गुण यश सम्पन्न लोगों को देखकर मानव के चित्त में ईर्ष्या का प्रवेश होता है, और वह विचलित हो उठता है, जो कि ठीक नहीं वास्तव में मनुष्य को चाहिए कि वह उसकी उत्कृष्टता को देखकर उसे डाह का रूप न देकर वाह-वाह का स्वरूप प्रदान कर ऐसे लोगों से मैत्री की भावना बनाये तो चित्त का अवसाद हटकर प्रसाद से परिपूर्ण हो उठता है।

(२) **करुणा करें घृणा नहीं**:- किन्हीं कारणों से किसी के शरीर में कुरूपता, अशक्यता, निन्दा, व्याधि भर गयी है, वह सन्तप्त है। वह है तो दुराचारी, समाज में उसकी इसी प्रकार की कुख्याति भी है, किन्तु स्वयं को सदाचारी घोषित करते हुए सदाचारियों में घुसता रहता है, ऐसे व्यक्तियों से घृणा न करके करुणा का भाव जगायें और अपने चित्त को निर्मल बनाये रखें।

(३) **मुदित हो कुपित नहीं**- कोई व्यक्ति लोक में यदि पुण्यात्माओं का सम्मान होता देखता है तो जब वह उसके सम्मान को सहन नहीं कर पाता है, तब उसका चित्त कुपित हो उठता है, द्वेष से भर जाता है। इस द्वेष व कोप को दूर करने के लिए उनके प्रति हर्ष की भावना करनी चाहिए। चाहे दूर के हों या पास के। ऐसे व्यक्तियों के प्रशंसक बन जाना चाहिए। इस प्रकार करने पर उसके चित्त में प्रसाद होगा अवसाद नहीं।

(४) **उपेक्षा करें अपेक्षा नहीं**- लोक में जहां पुण्यात्माओं का सामना होता है वहीं कभी-कभी अपुण्यात्माओं का सामना भी करना पड़ता है। ऊपर से सभ्य दिखाई देने वाले व्यक्ति अन्दर से असभ्य आपके उत्कर्ष को सहन नहीं कर पाते हैं और वे अपनी बातों से ही आपको अपमानित तथा उदास करना चाहते हैं। उनके असम्बद्ध प्रलाप को- 'नंग बड़े परमेश्वर से' की लोकोक्ति को ध्यान में रखकर अनसुना कर देना उचित है, क्योंकि उनसे आप जितनी भी वार्ता करेंगे, उनका यह प्रलाप बढ़ता ही जायेगा और आपका चित्त खिन्न होता जायेगा। अस्तु ऐसे व्यक्तियों की उपेक्षा करके ही आप अपने चित्त को शान्त रख सकते हैं। यही शान्ति प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन है।

चारों ओर से प्रहार करने वाली भौतिक कुचेष्टाओं से बचने के लिए यह चार उपाय तो ठीक हैं, किन्तु धरती-आकाश को मिला कर छहों दिशाओं से मानव-मस्तिष्क में भरने वाले सूक्ष्म षड्यंत्र के निष्कासन हेतु सत्यार्थ-प्रकाश-नवम समुल्लास में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा व्यक्त **षट्कसम्पत्ति** का सहारा

www.thearyasamaj.org

भी वांछनीय है। एक- 'शम' जिससे अपने आत्मा व अन्तःकरण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में सदा प्रवृत्त रखना। दूसरा- 'दम' जिससे नेत्रादि इन्द्रियों और शरीर को व्यभिचारादि बुरे कार्यों से हटाकर जितेन्द्रियत्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना। तीसरा 'उपरति', जिससे दुष्टकर्म करने वाले पुरुषों से सदा दूर रहना। चौथा 'तितिक्षा' चाहे निन्दा, स्तुति, हानि-लाभ कितना ही क्यों न हो, परन्तु हर्ष-शोक को छोड़कर मुक्ति के श्रेष्ठ कर्मों (साधना में) में सदा लगे रहना। मुक्ति ही नहीं सांसारिक सफलता की भी यही युक्ति है। पांचवां-'श्रद्धा' जो वेदादि सत्यशास्त्र और इनके बोध से पूर्ण आप्तविद्वान् सत्योपदेष्टा महाशयों के वचनों पर विश्वास करना। छठा- 'समाधान' ध्येय के प्रति चित्त की एकाग्रता बनाये रखना। अंग्रेजी कहावत के अनुसार खाली मस्तिष्क पैशाचिक कर्मशाला होता है। इस षट्क-सम्पत्ति के अनुसरण से मानव-मस्तिष्क का कुरुक्षेत्र 'वर्च, तेज, भग, यश, पय और रस' षट्क-सम्पदा पूर्ण धर्मक्षेत्र के रूप में सक्रिय बना रहता है।

आइए, अब छहों दिशाओं की प्रदक्षिणा करके ऋषिका सावित्रीसूर्या द्वारा निर्दिष्ट देवता का सान्निध्य प्राप्त करें। अथर्ववेद के इस सम्पूर्ण काण्ड का देवता- पति-पत्नी दोनों से मिलकर बनने वाली एक संज्ञा 'दम्पती' है। सृष्टि के आदि में अमैथुनी प्रजा के सृजन का स्रोत तो स्वयं परमात्मा होता है, उपरान्त मैथुनी सन्तति सृजन की आत्मा यही दम्पती होते हैं। दम्पती से ही परिवार का रूप बनता है। व्यक्ति समाज की इकाई हो सकता है, किन्तु राष्ट्र की इकाई परिवार ही होता है। भारतीय उपमहाद्वीप के दर्शन एवं पश्चिम के प्रदर्शन में परिवार के स्वरूप में बड़ा अन्तर है। पश्चिम में जहां पति-पत्नी एवं सन्तान परिवार के अंग होते हैं, वे भी कुछ समय बाद छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। यहां तक कि देखा गया कि उनमें धीरे-धीरे अपनत्त्व की भावना ही समाप्त हो जाती है वे भूल जाते हैं कि हम किस परिवार से हैं हमारे कौन सगे सम्बन्धी हैं। माता-पिता कौन हैं। सगे भाई-बहिन कौन हैं। किन्तु आर्यावर्त में ऐसा नहीं है। यहां परिवार की श्रृंखला कभी टूटती नहीं। यहां माता-पिता-आचार्य-अतिथि, कुलसपूत तथा कुलवधू इन छहों के संयुक्त रहने की परिपाटी सदैव सुदृढ़ रहती है। भले ही पीढ़ियां बदलती रहें, किन्तु पंचायतन पूजा के ये देवता सदैव विराजमान रहते हैं। भारतवासी जब पश्चिम को अपना आदर्श मानकर चलेंगे तो पूर्व का सूरज धूप तो दे सकता है किन्तु शाश्वत संस्कार नहीं। अब तो पश्चिम की धूल पूर्व की धूप को धूसरित

www.thearyasamaj.org

करती-सी प्रतीत हो रही है जिसके कारण भारत में भी पारिवारिक श्रृंखला टूटती-सी जा रही है जिसके कारण पुरानी पीढ़ी ही नहीं अपितु नई पीढ़ी भी अवनति की ओर तो बढ़ ही रही है साथ ही अशान्ति का भी घर बन रही है।

दैनिक हिन्दुस्तान (१.१०.१३) का 'मनसा वाचा कर्मणा' का सन्देश द्रष्टव्य है। विश्वस्वास्थ्य-संगठन के मनोचिकित्सक जोश बर्टोलोट के अनुसार घर-परिवार और सामाजिक बन्धन दवाओं से उत्तम सिद्ध होते हैं, जो नवजीवन दे जाते हैं। परिवार व्यक्ति को उत्तरदायी, सफल तथा आपदा से लड़ने की शक्ति देते हैं। थामस मूर कहते हैं कि पारिवारिक जीवन उतार-चढ़ाव से भरपूर होता है, सुख-दु:ख, सफलता एवं असफलता आदि इस तरह के चरित्र इसकी यात्रा में जीवन से गुजरते हैं। आत्मा के पोषण के लिए इससे उत्तम कुछ नहीं हो सकता। कैलीफोर्निया में हुए एक शोध के अनुसार जिन लोगों का पारिवारिक या सामाजिक जुड़ाव कम होता है, उनमें हृदयरोग, रक्तसंचरण के खतरे बढ़ जाते हैं। पेंसिल्वेनिया के कारनेगी रिसर्च थैलिनयूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने बताया कि जिन लोगों के पारिवारिक बन्धन सुदृढ़ होते हैं वे बीमारियों से दूर रहकर अधिक स्वस्थ रहते हैं। सद्‌भावनायें प्राय: परिवार की संगति में ही पनपती हैं। परिवार की एकजुटता ने मैडम हेलन केलर को ऐसी दृढ़ता प्रदान की कि उन्होंने विकलांगता के रहते हुए भी पूरी दुनिया को अपनी सफलता से चकित कर दिया। मनोविज्ञानी लारा किंग कहती हैं कि परिवार के बढ़ते रिश्ते जीवन के सुखद बदलाव हैं जो हर्ष के साथ-साथ हमें उन्नति की ओर अग्रसर करते हैं। परिवार में सदैव एक प्रेरणा छिपी रहती है जो घर के सदस्यों को अच्छे कार्यों के साथ ही सफलता की सीढ़ियों पर चढ़ने के लिए प्रेरित करती है। यही नहीं सफलता की सीढ़ी पर चढ़ने वाला व्यक्ति जानता है कि किसी कारण से वह फिसला तो परिवार उसे थाम लेगा और नवजीवन देकर लक्ष्य तक पहुंचने के लिए नया मार्ग दिखायेगा।

आदिगुरु शंकराचार्य, महर्षि दयानन्द सरस्वती और स्वामी विवेकानन्द ही क्या भारत के अनेकश: महापुरुष विवाह के प्रवाह में भले ही न बहे हो, किन्तु परिवार के प्यार व संस्कार ने ही उन्हें मानवता का सरताज बनाया, और उन्होंने अपने विशाल दृष्टिकोण से सम्पूर्ण विश्व-मानवता को ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का मार्ग दर्शन कराया।

'वरेण्यम्' अवन्तिका प्रथम, रामघाट मार्ग, अलीगढ़-202001 (उ०प्र०)

www.thearyasamaj.org

अंधकार की किरण

– श्रीमती उर्मि कृष्ण

जैसे ही तांगा गली के मोड़ पर मुड़ा सत्या का दिल बैठने लगा था। ऐसा नहीं था कि वह इस शहर में पहली बार आई हो। यहां तो उसके बचपन से लेकर किशोरवय तक के किलकते हंसते दिन बीते थे। जीवन के सबसे सुखद सपने उसने और मीरा ने यहीं देखे थे। वह तो ऐसी उम्र थी जब वह सत्य और कल्पना में भेद नहीं कर पाती थी। सारी कल्पनाएं उसे सुनहरी और सत्य लगती थीं। कभी-कभी तो वह इतनी उद्विग्न हो जाती थी कि क्यों नहीं सब कुछ आज ही घटित हो जाता। मीरा और वह घंटों बतियाती रहतीं पर उनमें कभी कहीं कोई निराशा की गंध नहीं होती थी। भविष्य की तो कौन जानता है पर किशोरवय की चंचलता के कारण उन्हें कई बार मां की ही नहीं पिता की भी डांट खानी पड़ती। मां-पिता भविष्य देखते थे और वे किशोरियां वर्तमान, जिसमें भरे होते सपने ही सपने। असत्य तो उन सपनों के बीच समाता ही न था। हर लड़का राजा, हर लड़की रानी। काश, कि बचपन वहीं ठहर जाता।

-सत्या तू मेरे साथ चलेगी न!

-हां पर कहां?

-मैं तो हवाई जहाज में उड़ूंगी।

-मैं तेरे जहाज को चलाऊंगी।

-अच्छा इतना साहस।

-तू मेरे साहस को चुनौती मत दे सत्या।

-अच्छा बाबा तू नहीं तो तेरा बेटा हवाई जहाज चला लेगा।

-दोनों खूब हंसी, देर तक हंसती रहीं।

बचपन कब रूबरू नहीं हो पाया है जिंदगी की धुंधली राहों से। जिन्दगी के हर मोड़ पर वह खड़ा हो जाता है। उनके घर कितने छोटे थे और सपने कितने बड़े।

छोटे घरों में बड़े सपने देखना कोई गुनाह तो नहीं था।

मां उनकी धरती-आसमान की बातों को सुन कभी हंस देती तो कभी डांट देती।

-हवा में मत उड़ो लड़कियो, धरती पर रहो धरती पर।

और वे दोनों हंसते-हंसते आखें गीली कर लेतीं। कुछ अजब संयोग था कि दोनों का

www.thearyasamaj.org

कोई सगा भाई नहीं था। दूसरी लड़कियों के भाइयों को देख उन्हें भी राखी, भैयादूज जैसे त्योहारों पर भाई की कमी खलती। पर जब कभी मां-पिता पुत्र की कामना में कठिन व्रत पूजा मनौतियां करते तो इन लड़कियों को अपनी हीनता का आभास होने लगता। क्या हम कभी इनके पुत्रों का स्थान नहीं ले सकेंगी?

तांगे वाले ने फिर पूछा, कहां तक जाना है बहनजी?

ओफ....चारों ओर देखकर।

-आगे तो चलो अभी।

सर्दी का सूरज साढ़े चार बजते-बजते धुंधला गया था। छोटा शहर, भीड़-भाड़ से दूर यह इस कालोनी की गली में इक्का-दुक्का लोग ही चलते नजर आ रहे थे। तांगे के घोड़े की टाप सुन कुछ लोग घर के बाहर निकल-निकलकर देखने भी लगे थे। सत्या की आखें मकानों के नम्बर पर टिकी थीं और मन बिजली की गति से दौड़ रहा था।

-मीरा सुना है पिताजी का ट्रांसफर होने वाला है।

-ये....! नहीं यह नहीं हो सकता ? मीरा एकदम तिलमिला उठी थी। सत्या के पिता का ट्रांसफर होने का अर्थ है सहेली सत्या का भी चला जाना। वह यहां पर इसीलिए तो है कि उसके पिता यहां बैंक अधिकारी हैं। पिछले सात वर्षों से वे यहीं टिके हुए हैं। मीरा के पिता का तो व्यवसाय ही यहां है। दोनों सखियों के घर नजदीक थे। वे आसानी से एक दूसरे के घर किसी भी समय आ-जा सकती थीं। एक ही स्कूल में पढ़ने के कारण उनकी मित्रता और भी गहरा गई थी। मीरा और सत्या की दोस्ती में कोई दुराव-छिपाव नहीं था। छोटी से छोटी चीज भी एक दूसरे को दिखाने दौड़ पड़ती। पहनने, ओढने, किताब कापी, एक जैसे बस्ते, एक जैसे कपड़े, एक जैसी किताबें और एक जैसा खाना, एक जैसी पसंद, एक जैसा फैशन। दोनों ने एक साथ फ्राक पहनना शुरु किया और एक साथ सलवार कुर्ता। जब कभी मीरा की मां कोई बढ़िया खाने की चीज बनाती मीरा दौड़कर पहले सत्या के पास जाती। सत्या के बिना वह कैसे कोई स्वादिष्ट चीज खा सकती थी। मां कई बार सत्या से मजाक कर उठती थी-- बेटियो जब तुम अलग-अलग ससुराल जाओगी तब कैसे रहोगी ?

मीरा भोलेपन से कहती- मम्मी तुम हमें एक घर में ब्याह देना।

-हां कोई ऐसा घर देखना जिसमें दो लड़के बराबरी के हों। सत्या हंसते हुए कह देती थी।

-लड़कियो थोड़ा कम बोला करो। सत्या की मां उनकी पीठ पर धौल जमाते हुए कहती और

www.thearyasamaj.org

फिर खूब हंसती।

समय नदी की धार बन बहता रहा। उस धारा में बह गये थे बड़े-बड़े समय के पत्थर। पिता की बदली के संग बिछुड़ गई थी दोनों सखियाँ सत्या और मीरा। दोनों की पढ़ाई पूरी हुई। फिर शादियों हुईं। एक-दूसरे के घर शादी के निमंत्रण आये थे। कोई जा तो नहीं सका था। केवल शुभकामनाओं के पत्र भेज दिए गये थे।

मीरा अपनी शादी के आठ दिन बाद ही सत्या की शादी का बहुत ही सादा-सा निमंत्रण-पत्र देख हैरान रह गई थी। सत्या की शादी साहिल से ? साहिल सत्या के साथ पढ़ने वाला लड़का था। निरंतर रहने वाले पत्र-व्यवहार में दोनों सहेलियों को एक दूसरे की पूरी जानकारी रहती थी। साहिल का जिक्र तो सत्या ने कई पत्रों में किया था पर बात यहां तक बढ़ जायेगी यह अंदाजा उसे नहीं था। मीरा को इस बात पर कुछ क्रोध भी आया- सत्या की बच्ची इतनी बड़ी बात मुझसे छुपा गई।

मीरा ने जब अपनी सहेली को क्रोध और उलाहने भरा पत्र लिखा तो उसका छोटा-सा उत्तर क्षमा प्रार्थना के साथ आया था।

सत्या साहिल के साथ शादी की बात छिपा लेने का कारण यह था कि हमारे दोनों के परिवार तो इस शादी के लिए राजी थे पर दोनों की बिरादरी इस रिश्ते को नहीं स्वीकार कर पाई। शादी के दूसरे ही दिन लोगों की भीड़ ने हमारे घर पर हमला बोल दिया। मां-पिता ने हमें पिछले रास्ते से भगा दिया। हम भागकर ट्रेन में चढ़े और एक अन्य दोस्त के यहां महीने भर छिपे रहे। फिर दूसरे रिश्तेदार के यहां रहे। इस बीच हमारे लंदन जाने का इंतजाम हो गया। आगे की कहानी तुम्हें मेरे पिता ने बताई ही होगी।

साहिल की ओर मेरा आकर्षण तो था किन्तु पिता ने वचन लिया था कि जब तक मैं तुम्हारी शादी न कर दूं तब तक तुम अपनी मां से भी यह बात नहीं कहोगी और मां को तब बतलाया गया जब हम दोनों के पिताओं की उपस्थिति में कोर्ट में शादी करा घर लौटे। पिता के साहस उदारता और प्यार के आगे मैं नतमस्तक हूँ मीरा। उन्हें भी बिरादरी के बंदों का डर था वही हुआ। भड़के लोगों ने घर ही नहीं तोड़ा पिता के हाथ-टांग भी तोड़ दिए थे। जिस कारण वे छः माह बिस्तर पर पड़े रहे। वह तो कुछ भले मानसों ने उन्हें बचा लिया।

हमारे लंदन के लिए रवाना होने से पहले ही मेरे पेट में दर्द होने लगा। इतना भारी दर्द मैं सह नहीं सकी। प्रथम मातृत्व का दर्द सातवें मास में ही उठा और बेटे का जन्म हो गया। समय से पूर्व ही जन्मे कमजोर बच्चे को बीस

www.thearyasamaj.org

दिन अस्पताल में ही रखा गया। इतने छोटे और कमजोर बच्चे को सम्भालना भी कठिन था। अभी तक वे समाज की नजरों से छिपकर रहे थे। पिता या ससुर के घर सत्या जा नहीं सकती थी। दोनों घरों में बार-बार धमकी-भरे पत्र मिल रहे थे कि अब जब भी लड़का या लड़की हमें घर में दिखाई देंगे हम उन्हें जिंदा नहीं छोड़ेंगे। धर्म के ठेकेदारों का यह जुनून दो प्रेमियों के साथ-साथ दो परिवारों को भी नष्ट कर रहा था।

समझदार परिवारों ने दोनों बच्चों को बचाने के लिए पहले तो देश में ही आठ माह छिपाकर रखा फिर विदेश भेजने की व्यवस्था कर दी। उन्होंने सोचा कुछ साल यहां से दूर चले जायेंगे तब तक लोगों का क्रोध शांत हो जायेगा। किन्तु अब तीन सप्ताह के बच्चे की समस्या थी। इतने छोटे कमजोर बच्चे को प्लेन में ले जाने की अनुमति भी नहीं मिली। कुछ मित्रों ने सुझाया बच्चे को किसी बालगृह में दे दो। इस बात पर सत्या और साहिल दोनों ही राजी नहीं हुए। सत्या का तो रोते रोते बुरा हाल था।

-पापा मैं छिपकर भागना नहीं चाहती। मैं उनका सामना करूंगी जो हमें बरबाद करने पर तुले हैं।

-बेटी मैं तुझे कैसे समझाऊं। भीड़ और क्रोध की बुद्धि नहीं होती।

-पापा उनका सामना करने के लिए हमें एक मौका तो दो।

-बेटी अपनी टांगें सदा के लिये खोकर मैं ऐसी चुनौती कैसे ले सकता हूं ? अपनी आंखों की ज्योति को मैं आग में नहीं झोंक सकता।

साहिल और सत्या के पिता भी लोगों से नजर बचाकर मिलते थे। अपने बच्चों को बचाये रखने की योजना वे दिन-रात बनाते रहते थे। भारी विडम्बना यह थी कि जिन्हें लड़ना चाहिए था वे तो गले मिल रहे थे और लड़ रहे थे वे जिन्हें इनसे कोई लेना देना नहीं था। अपना धर्म अपने रास्ते। हम अपनी जात में जीयेंगे, जात में मरेंगे।

-क्या तुम्हारी जात के सब लड़के मर गए थे ?

-दिन के उजाले में लाठी बरछी चलाने वाले रात में बैठ अध्यात्म-चर्चा करते नहीं थकते- सब ओर उसी का रूप है। सारा संसार उसी के इशारे पर चल रहा है। भैया क्या लाये हो जो ले जाओगे। भले कर्म ही तुम्हारे काम आयेंगे। जब माइक पर कीर्तन के बाद उपरोक्त भाषण सुनाया जाता तब सत्या के पिता कान बंद कर बैठ जाते। आंखों से गिरते आंसुओं के बीच वे कह उठते कहां गये बुद्ध करुणा के अवतार ? कहां हो दयानंद, विवेकानंद कहां हो गांधी ? इस दुनिया को उबारने के लिए कोई पैगम्बर

www.thearyasamaj.org

काम क्यों नहीं आया? भागवत, गीता, कुरान, बाइबल तुम ढाई आखर का 'प्रेम' क्यों नहीं भर सके इस क्रूर दुनिया के मानव में ? सत्य क्या है मनुष्य को बचाना या मारना? हममें कितनी गहरी भरी है ईर्ष्या, द्वेष अहंकार की आग। हम अपने ही बच्चों के प्राणों के प्यासे बन गये हैं और इस घर और बाहर जलती आग के बीच उस छोटे बच्चे को मीरा के घर रातोंरात पहुंचाया गया था। आधी रात को चलने वाली गाड़ी से सत्या के मां-पिता बच्चे को लेकर जब मीरा के घर मुंह-अंधेरे पहुंचे तो उन्हें देख वह हैरान रह गई।

अपनी प्राणप्रिय सहेली के माता-पिता को इस संकट से उबारने के लिए उसने बच्चे को स्वीकार कर लिया। उस समय उसकी अपनी एक दो साल की बेटी थी। बच्चे को उसने अपने दूध ही नहीं प्राणों से पाला। उसकी किलकारियों में तो वह भूल भी गई कि बच्चे को जन्म देने वाली मां वह नहीं है और एक दिन तो ऐसा आया जब उसे मां-पिता का नाम भी देना पड़ा। बड़ा होता 'जलज' अपने मां-पिता इन्हीं को समझता रहा। स्कूल के, कालेज के रजिस्टरों में पिता मीरा के पति थे। सारी परिस्थिति को समझकर मीरा के पति ने बहुत समझदारी से काम लिया। उन्हें सत्या का परिचय अपनी पत्नी मीरा से ही मिला था। मीरा का सत्या के लिए परिचय देना केवल एक सहेली का परिचय नहीं था। वह परिचय उसके जान प्राण का परिचय था। मीरा के परिचय वर्णन से ही वे सत्या की तस्वीर मन में बनाकर उसका सम्मान करने लगे थे। अपनी पत्नी को भी वे सम्पूर्ण हृदय से प्यार और आदर करते थे। उसकी किसी बात को वे कभी थोथी या निरर्थक नहीं समझते थे। यही कारण था कि उन्होंने पत्नी की सहेली के मात्र बीस दिन की उम्र के बेटे को अपने पास रखना स्वीकार कर लिया। एक वर्ष तक चला तूफान शांत हो गया और जीवन सहज सुचारु रूप से चलने लगा। अब मीरा अपने पितृ नगर में रहने आ गई थी।

जलज बड़ा होता गया। पढ़ने के साथ-साथ वह खेल-कूद में भी हमेशा आगे रहा। समय की गति बहुत तेज रही। सत्या और उसके पति आठ वर्ष तक विदेशों में जगह-जगह घूमते हुए अपने पैर जमाने का प्रयत्न करते रहे। इधर मीरा के पति दूर अरुणाचल स्थानांतरित हो गये। बेटा जलज तो आगे बढ़ता रहा किन्तु दोनों मां बाप के बीच सम्पर्क टूट गया। एक दूसरे का कुशलक्षेम जानने के लिए दोनों सखियां बेचैन रहतीं किन्तु बरसों एक-दूसरे के पते नहीं जान पाईं। सत्या के मां पिता भी जीवित नहीं रहे। मीरा के मां पिता भी दुनिया छोड़ गये। युग बदल गये मां पिता का

www.thearyasamaj.org

इतिहास अब बेटे-बेटी दुहराने लगे थे। बेटी ने जिसे पसंद किया मीरा ने बिना किसी विवाद के खुशी के साथ उसकी शादी कर दी।

एक दिन जब बेटा भी अपनी पसंद की लड़की के साथ इन पालनहार मां-पिता के सामने खड़ा हो गया तब मीरा कुछ उलझन में पड़ गई। वह सत्या को खोजकर उसे इस शुभ सूचना से अवगत कराना चाहती थी। बेटे की बेचैनी बढ़ रही थी। मां जल्दी उसकी पसंद स्वीकार नहीं कर रही थी।

-मां आखिर नैनी में बुराई क्या है ?

-बुराई कुछ नहीं बेटा। कुछ दिन सोच लेने में क्या बुराई है?

-और कितने दिन सोचोगी मम्मी ?

-बेटा अपने घर जिसे लाना है उसके लिए धैर्य से सोच विचार करना होगा।

-मम्मी बताओ न तुम्हें कितना समय चाहिए।

-बहुत बेचैन हो रहा है! हंसते हुए मीरा ने कहा।

मीरा का सुखी संतुष्ट मन कई परतों के नीचे एक भारी अकुलाहट अनुभव कर रहा था। वैसे यह अकुलाहट नई उत्पत्ति नहीं थी पिछले बाइस सालों से मन के किसी कोने में पड़ी आग आज जैसे भभककर ऊपर आना चाहती थी। अब वह हर क्षण यही सोचती थी कि किस तरह जलज को सत्य बताऊं ? बताऊं भी या नहीं। सत्या मिल पाती तो उससे सलाह करती। अब जब कभी वह अपने बेटे को देखकर ले जाना चाहेगी तब क्या होगा ? मैं कैसे सहूंगी ? और जलज जायेगा ? आसानी से वह मानेगा क्या ?

एक मकान के गेट पर नामपट्ट देखकर तांगा रुका। यही नम्बर है न बहनजी, तांगे वाले ने कहा तो सत्या एकदम चौंकी- हां-हां यही। उसका दिल तीव्र गति से धड़क रहा था। धीमे कदमों से चलकर वह गेट तक पहुंची। काफी बदल दिया है मकान को मीरा ने। इस सुन्दर सुहाने मकान में वह तो पिताओं के समय का पुरानापन ढूंढ रही थी। वह ईंटों की दीवार को छूता हरसिंगार। वह पीछे आंगन से झांकता आम, आंगन के साथ-साथ चलती कच्ची नाली और बरामदे में पड़ी चिकें। मीरा ने घर और युग दोनों ही बदल दिए हैं। उसने गेट पर लगी बेल बजाई। किसी युवक ने आकर दरवाजा खोला। क्षणमात्र को वह सत्या के पैरों पर झुका और झट सामान उठाकर अन्दर चला गया। सत्या उसके पूरे रूप को आखों में भी नहीं भर पाई। वह तांगे वाले को पैसे चुकाकर मुड़ी तो मीरा सामने खड़ी थी। घर के बरामदे में ही भरत-मिलाप-सा दृश्य उपस्थित हो गया। दोनों के आंसुओं से धरती भीगने लगी। बेटा जलज खिड़की की राह देखकर चकित

www.thearyasamaj.org

था कि दोनों सहेलियां हैलो हाय के साथ मिलने के बजाय रोकर गले मिल रही हैं। हां मां ने बताया था, शायद पुराना मिलने का ढंग यही था। पर आंटी तो बरसों विदेश में रही हैं? कुछ लोग होते हैं जो अपना पुराना ढंग नहीं छोड़ते। क्या किया जाय। पर मम्मी को रोते देखना मुझे अच्छा नहीं लग रहा। हां- मैं भी होस्टल से आकर जब मम्मी के गले लगता तो मम्मी की आंखें भर आती थीं। महिलाएं भावुक होती ही हैं। अपनी वो भी बात-बात में आंसू टपका देती है।

वे दोनों ड्राइंग रूप में आकर बैठ गई थीं और जलज क्रिकेट मैच देखने में व्यस्त हो गया था।

कुछ ही देर में सत्या मुंह-हाथ धोकर आई। मीरा ने चाय टेबल पर लगा दी। मीरा चाय बनाने में व्यस्त थी और सत्या की आखें ड्राइंगरूम में लगे युवा के चित्रां पर अटक-अटक जा रही थी। इसकी आखें कितनी मिल रही हैं उनसे। जब दोनों सहेलियों की आखें टकराई तो मौन बहुत कुछ कह गया। चाय पीते-पीते सत्या की आखें उन चित्रों पर बार-बार टिक रही थीं और मीरा की आखें डबडबा रही थीं।

-बेटा जलज आओ। मौसी के साथ चाय पीओ।

-अपने लिए 'मौसी' शब्द सुन एक बारगी सत्या कांप उठी। फिर अपने को संयत कर बातें करने का प्रयत्न करने लगी। पर सामने बैठे जलज को देख-देख उसका जिंदगी भर रुका ममत्व फूट पड़ने को आतुर हो उठा। मीरा ने नाजुक स्थिति को समझा और जलज को किसी बहाने बाहर भेज दिया। दो स्त्रियों के इस भावनात्मक संघर्ष को समझने में जलज असमर्थ था। फिर भी वह इतना बच्चा नहीं था। कुछ गम्भीर बात है यह उसे समझ आ रही थी। सत्या चाहकर भी जलज से बात नहीं कर पा रही थी।

कितनी बातों के ग्रंथ भरे थे मन में फिर भी दोनों सहेलियां ऊपरी बातों में अपना समय काट रही थीं। रात का खाना तीनों ने साथ खाया। थकी होने के कारण सत्या जल्दी सोने चली गई। मन में उठती ऊंची लहरें उसे नींद में जाने से रोक रही थीं। वह चाह रही थी कि जलज के पास ही बैठे और उसे ही निहारती रहे। युवा बेटे को देखने का सुख मां के अंतर्मन से पूछा- क्या जलज मेरे साथ जाने को राजी होगा? जब उसे सत्य पता चलेगा तब भी क्या वह अपनी इस जन्मदात्री मां का आदर करेगा? सत्या का सिर फटने को हुआ। एक नींद की गोली निगल वह सो गई।

उधर मीरा बेटे के पास आ बैठी थी।

www.thearyasamaj.org

-ममा...

-हां बेटे।

-आज तुम कुछ परेशान लग रही हो ?

-नहीं तो बेटे। बस कुछ थकी हूं।

-नहीं ममा कुछ बात है ? डैडी की याद आ रही है ?

-मीरा मुस्करा दी- वो कौन दूर गए हैं कल या परसों आ जायेंगे।

-फिर क्या बात है मम्मी ?

-सोचती हूं तुझे लंदन पढ़ने भेज दूं तो मैं कैसे रहूंगी अकेली।

-मां मैं कहीं नहीं जाऊंगा। कहते हुए जलज मां के गले में झूल गया।

-मां ने बेटे का माथा चूमा। अच्छा बेटे, अब सो जा। मैं भी सोऊंगी।

सत्या चार दिन मीरा के पास रही। दोनों सहेलियां उठते-बैठते घूमते फिरते खाते-पीते तनाव में बनी रहीं। दोनों में से किसी का साहस नहीं हुआ कि बेटे को सच से अवगत करा दें। हालांकि पहले दोनों में यह तय हो चुका था कि जब हम दोनों सामने होंगी, बेटा भी सामने होगा, तब उसे सत्य से परिचित करा देंगे।

मीरा और बेटे के लाड़-दुलार भरा सम्बन्ध देखकर सत्या का मन सत्य को चोट करने को नहीं हुआ। यदि उस समय बीस दिन के बालक को मीरा स्वीकार न करती तो...?

सत्या ने दूसरे दिन जाने की तैयारी कर ली। मीरा ने देखा तो सत्या के पास आ खड़ी हुई। सत्या ने मीरा के कंधे पर सिर टिका दिया और रो पड़ी।

मीरा की आखें भी बरसात बन गईं।

-मीरा मैं तुम्हारी कोख सूनी करने का साहस नहीं कर सकती।

-यह क्या कह रही हो सत्या। कोख तुम्हारी सूनी हुई है।

-कोख मेरी थी पर उसकी रौनक तुम्हारे घर में समाई है। अब उसे सूनापन देना अन्याय होगा। तुम्हारे तप की मैं तुम्हें सजा नहीं दे सकती ।

मीरा का मन हुआ सहेली के पैर पकड़ ले।

पूर्व में प्रभात की किरणें फूट रही थी और बेटा जलज मौसी मां को छोड़ने स्टेशन जा रहा था। दो दिन से वह अपनी मम्मी के कहने पर सत्या को इसी सम्बोधन से बुला रहा था।

-ए-47, शास्त्री कालोनी, अम्बाला छावनी-133001

www.thearyasamaj.org

मरुभूमि की मन्दाकिनी मीरा

– डॉ. शिवाधार चौंबे

मरुभूमि की मन्दाकिनी मीरा को कृष्ण की प्राप्ति नहीं होती, परिणामतः उनके पद में विरह-वेदना की अनुभूति स्वयं कविता बनकर सहस्रधाराओं में फूट पड़ी और उनका काव्य विरह-वेदना का विषादमय काव्य बन गया। मीरा का दर्द अगाध है जिसे मापा नहीं जा सकता, वह केवल अनुभव-गम्य है। प्रियतम के वियोग में वेदना और टीस का जितना अनुभव एक भारतीय नारी करती है; उसकी मार्मिक व्यञ्जना अनुभूति के धरातल पर मीरा के काव्य में साकार हुई हैं। मीरा के विरह-वर्णन में आत्मक्रन्दन का जो रूप मिलता है कृष्ण-प्रेम की जो कसक मिलती है; वह आज भी सहृदयों की धड़कने तेज कर देती है।

वेदना की अमर गायिका मीरा के विरह गीतों में कृष्ण-प्रेम की कसक और विरह की जो मार्मिक अनुभूतियुक्त एवं सरल अभिव्यञ्जना हुई है, वह अद्भुत है। मीरा कृष्ण की अनन्य भक्त थी। बाल्यकाल से ही परिवार के सत्संगयुक्त वातावरण एवं आस्थामयी प्रवृत्ति ने मीरा के हृदय को अलौकिक सौन्दर्यशाली भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति के रंग में रंग दिया। कृष्ण ही मीरा के प्रभु, प्रियतम,आराध्यदेव हैं – 'सात बरस की मै श्रीरंग सेविका, जद पायो सुख सुहाग' के अनुसार सात वर्ष की बाल्यउम्र से ही मीरा ने कृष्ण-भक्ति प्रारम्भ कर दी थी। बचपन में खेलते समय मिले एक छोटे-से पत्थर को उन्होंने 'सालग्राम' माना और उन्हीं की सेवा जीवनपर्यन्त करती रही। मीरा की भक्ति माधुर्य या दाम्पत्यभाव की थी। प्रेम से हृदय धुल जाता है और सारे प्रपञ्च नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण प्रेम को भगवान् का रूप माना गया है। कहा जाता है- जहाँ प्रेम है, वहीं ज्ञान है, वहीं श्रेष्ठता है और सत्य है। प्रेम वह सूत्र है जो दो पृथक्-पृथक् पड़े हुए सत्त्वों अथवा तत्त्वों को संयुक्त कर देता है। भक्त कबीर का इस सन्दर्भ में कथन है- 'प्रेमी ढूंढत मै फिरौ, प्रेमी मिलै न कोई। प्रेमी को प्रेमी मिले तब सब विष अमृत होय।' मीरा के हृदय में

www.thearyasamaj.org

कृष्ण की साँवरी सूरत और मोहिनी मूरत इस तरह व्याप्त थी कि देवर द्वारा किए गए घोर अत्याचारों के बावजूद भी श्रीकृष्ण के प्रति उनकी प्रेम-साधना कम नहीं हुई। मीरा की भक्ति-भावना उनके गिरधर गोपाल के प्रति अगाध प्रेम का उदात्त रूप है। माधुर्य-भक्ति में भक्त अपने आराध्य को पति और सर्वस्व रूप में देखता है 'मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।।' मीरा के इष्ट श्रीकृष्ण सदैव उनकी आंखों में सगुण रूप में विद्यमान हैं। वह उनकी सांवरी सूरत और मोहिनी मूरत पर लुट चुकी थी "वसो मेरे नैनन में नन्द लाल मोहिनी मूरति-साँवरि सुरति, नैना बने विशाल।" श्रीकृष्ण गृहीत-मानसा मीरा ने एकनिष्ठ भाव से जीवन-पर्यन्त बाल स्नेही गिरधर गोपाल, गिरधर नागर के रंग में रंग कर प्रियतमा रूप में प्रेम किया। वह अपने परिवार व समाज का त्याग कर कृष्ण के समक्ष नृत्य करती है। उन्हें रिझाती है उनका सामीप्य पाना चाहती है। वह सदैव श्रीकृष्ण-सेवा में समर्पित रहना चाहती है। मीरा की माधुर्य भक्ति की चरमावस्था इष्टदेव के प्रति आत्मसमर्पण की है। यदि उन्हें आधुनिक युग की राधा कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। मीरा का कथन है- "मेरा प्रियतम मेरे हृदय बसत है ना कहु आती-जाती।" मीरा के विरह की गहराई और वेदना की तड़प अनुभूतिजन्य है। मीरा विरह वेदना में इतनी व्याप्त है कि उनको कहना पड़ा "मै तो प्रेम दिवानी, मेरा दर्द न जाने कोय...। अंत में मीरा अपने और प्रियतम के बीच की दूरी को हमेशा के लिए समाप्त कर स्वयं को अपने प्रियतम में विलीन कर लेना चाहती है- "म्हारा पिया म्हारे हीयरे बसता" मीरा की माधुर्य भक्ति की एकनिष्ठता, अनन्यभाव, आत्मसमर्पण, सत्सङ्ग, वैराग्य की महत्ता एवं कृष्ण की विविध लीलाओं का गान उनकी अन्यतम विशेषता है। मीरा की समूची पदावली उनका सुन्दर प्रेमोद्गार है- 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ।' कृष्ण के प्रति मीरा की प्रीति जन्म-जन्म की प्रीति थी। सचमुच मीरा प्रेम की पीर और विरह वेदना की अमर गयिका है। कृष्ण-प्रेम की अनन्य पुजारिन मीरा का साहित्य उनके प्रेमी हृदय की सच्ची पुनीत गाथा है।

-पं.वि.वि. साधु आश्रम, होशियारपुर।

www.thearyasamaj.org

संत रविदास की लोक-चेतना

– डॉ० रमाकान्त

लोक-चेतना जीवन की सहज चेतना है। इसी सहज चेतना में सहज रूप से लोक बसता है और लोक में बिना किसी प्रयास के यह चेतना बसती है। इसका बोध जब मंद पड़ने लगता है तब हमें संतों-भक्तों की जरूरत पड़ती है। हमारी लोक-चेतना पर जब-जब ऐसा संकट आया है, तब-तब अनेक संतों ने अपनी बानियों से संकट की श्रृंखला को काटने का प्रयास किया है। उन्हीं संतों में रैदास का भी नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। वास्तव में रैदास की 'बानी' लोक की बानी है। वह लोकचेतना की नानाविध व्याख्या करती है और अपनी व्याख्या से मनुष्यता का पथ प्रशस्त करती है। अपने एक पद में रैदास ने लिखा है कि –

लोक बेद मेरे सुकूल बड़ाई,
लीक लोक मों पैताजि न जाई।
इन मिलि मेरो मन जुकिरायो,
दिन-दिन हरि जो सूँ अन्तर पार्‌यो।[1]

बार-बार इस तथय को उजागर किया जाता है कि समाज और साहित्य का आधाराधेय सम्बन्ध है। समाज और साहित्य दोनों के ही केन्द्र में मनुष्य है। यही मनुष्य समाज और साहित्य दोनों को ही रचता है तथा मनुष्य को उसका परिवेश रचता है। इसी प्रभाव के कारण वह सामाजिक सरोकार के अनेक संदर्भों को अपने साहित्य में उद्‌भावित करता है। संत रैदास भी इस वस्तुसत्य के अपवाद नहीं हैं। यद्यपि वे संत थे और उनका जीवन लक्ष्य आध्यात्मिकता था, लेकिन उनकी दृष्टि से संसार और समाज ओझल नहीं होने पाये हैं। रैदास की भक्ति और उनकी साधना में लौकिक युग की सम्पूर्णता के साथ-साथ वर्तमान भी दिखाई पड़ता है। यह विद्यमानता चाहे जातिगत व्यवस्था को लेकर हो चाहे बहुविध सामाजिक आधार-विचार को लेकर। रैदास जी ने इन सारी स्थितियों से हमें रू-ब-रू कराया है।

इस देश के लिए जातिगत व्यवस्था कोई नई बात नहीं है। अपने मूल स्वरूप में यह इतनी दूषित नहीं थी, जितनी यह आज है। कारण यह है कि उस समय प्रारम्भ में इसके विभाजन का आधार जन्म नहीं, कर्म था। धीरे-धीरे कर्म का आधार खिसकता गया और जन्म

१. डॉ० रवि कुमार 'अन्नु' (सं०) 'मध्यकालीन लोकचेतना' रैदास की लोकचेतना डॉ० रामसजन पाण्डेय, दिल्ली संजय प्रकाशन।

www.thearyasamaj.org

का आधार दृढ़ होता गया। जन्म का आधार ही सामाजिक विषमता का कारण बना, ऊँच-नीच भावना को फैलाने वाला बना और अस्पृश्यता छुआ-छूत का हेतु बना। मनुष्य, मनुष्य से दूर होता चला गया वह मनुष्य से जाति बन गया और ऐसी जाति मनुष्यता के लिए 'सुरसा' बन बैठी। रैदास ने मनुष्यता-मानवीय एकता की व्याख्या के क्रम में जन्ममूलक जाति-व्यवस्था को अस्वीकार किया और सम्पूर्ण सृष्टि को परमात्मा की सर्जना मानकर समता का भाव रखा।

इसी व्यापक दृष्टि के कारण रैदास जाति-वर्ण को अस्वीकार करते हैं और मानते हैं कि जातिव्यवस्था के कारण ही मनुष्य परस्पर जुड़ नहीं पाते हैं। यही जाति-व्यवस्था मानवीय एकता में बाधक है।[२]

लोक-परिष्कार और लोक-विस्तार के लिए ही रैदास ने जाति-पाँति, तन्त्र-मन्त्र, पूजा-नमाज, तीर्थ-व्रत आदि का निषेध किया है। उन्होंने अपने एक पद में बार-बार बाह्याचार, बाह्याडम्बर को संकेतित करते हुए उसे भ्रम की संज्ञा दी है और उससे दूर रहने का उपदेश दिया है। रैदास ने नाच, गान, जप, तप, दान, सेवा, पूजा, षट्कर्म, इन्द्रियसंयम, गुफावास आदि सभी को भ्रम माना है। उन्होंने इस भ्रामक भक्ति के अन्तर्गत स्वीकार किया है।[३]

भारत में असमानता के कई स्तर हैं। गरीबी और अमीरी के बीच खाई। जाति के आधार पर उच्च जाति और निम्न जाति। धर्म के आधार पर साम्प्रदायिकता को लेकर मानव-मानव के बीच असमानता का सबसे बड़ा तत्व धन और पद है। संतो ने अपने सुलझे हुए व्यक्तित्व के बल से अपनी वाणी से इन असमानताओं को पाटने का प्रयास किया।

आज भारत विश्व के किसी भी देश से पीछे नहीं है। फिर भी भारतीय समाज में अपने संकीर्ण विचारों के कारण अपने ही देश में अपने लोगों से समानता की भावना नहीं रखी गई है। गुरु रविदास की वाणी समाज को मानव समानता का संदेश देती है। भक्ति के माध्यम से मानव और समाज के सम्बन्धों की मानवीय व्याख्या प्रस्तुत करती है। समाज में प्रचलित भेदभाव और ऊँच-नीच को समाप्त कर परस्पर प्रेम, भाईचारा का जो संदेश आपकी वाणी में मिलता है वह आज भी प्रेरणादायक है। आपकी भक्ति में निहित मूल्य मानवीय शाश्वतता की महागाथा है। रविदास जी का मानना था कि हम सब प्राणी ईश्वर की देन हैं। मानव-मात्र के सम्बन्ध में आपका मत है-

''इक जोति तैं जड़ सम उपजै, तउ ऊँच-नीच कस मान।।''[४]

भक्त रविदास ने अपने युग में मानव समानता के अधिकारों की बहाली के लिए जोरदार अभियान चलाया था, लेकिन उनका स्वप्न अधूरा रहा। आज भी भारत में समानता की बात पूरी तरह से लागू नहीं है। भले ही वैधानिक दृष्टि से देश के सभी नागरिकों को

२. आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, 'रविदास दर्शन', श्री गुरु रविदास संस्थान, चण्डीगढ़।
३. डॉ० रवि कुमार 'अन्नु' (सं०) 'मध्यकालीन लोकचेतना' दिल्ली, संजय प्रकाशन।
४. अशोक सभ्रवाल, 'संत काव्य के विविध आयाम' चण्डीगढ़, अरुण पब्लिशिंग हाऊस, प्रा.लि.

www.thearyasamaj.org

समानता का अधिकार है। समानता के अधिकारों के लिए अनेक कानून भी बनाए गए हैं जैसे- अस्पृश्यता अपराध अधिनियम १९५५, अनु. १७, लेकिन व्यवहार में आज भी एक बहुत बड़ा हिस्सा इस समानता के अधिकार से वंचित है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि जो तबका भक्त रविदास के समय समानता के अधिकारों से वंचित था, वह आज भी वंचित है। भक्त रविदास के समय कोई संवैधानिक अधिकार नहीं था, लेकिन आज संवैधानिक अधिकार होते हुए भी असमानता काफी है। विशेषकर आज भी वोट की राजनीति ने तो कभी जाति के नाम पर, कभी आर्थिक आधार पर, कभी अशिक्षा के कारण, कभी अल्पसंख्यकों के नाम पर तो कभी विदेशी भारतीय के आधार पर आरक्षण देकर देश को और भी अधिक वर्गों में जातियों और उपजातियों में बाँट दिया है। आज सभी चाहते हैं कि हमें यह अधिकार मिले जिसके लिए आज व्यापक रूप से हड़ताल जन-आन्दोलन इत्यादि हो रहे हैं तथा देश की जनहानि तथा धनहानि हो रही है। ऐसे समय में एकमात्र गुरु रविदास जी की वाणी ही मानवीय एकता को प्रेम के धागे में पिरोकर हृदयों को जोड़ने वाले मानव से प्रेम की सीख सकती है। यह हो सकता है कि सामाजिक व्यवस्था ने एक युग में समाज के एक वर्ग के लिए ऐसी स्थिति पैदा कर दी थी कि वे मानवीय धरातल पर खड़े होने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। स्वदेशियों की ऐसी विगर्हणा के साथ ही मध्य युग में वह समाज विदेशियों के पराभव का शिकार भी हुआ। ऐसी अवस्था में वे एक ओर हिन्दूधर्म के शिष्ट अंग भी न रह सके और दूसरी ओर उसकी सामाजिक चेतना से अपने आपको अभिभूत भी न कर सके। विदेशियों ने इसका अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयत्न किया। लेकिन स्वाभिमानी इन व्यक्तियों ने अपनी परम्परा को त्यागने में विशेष आग्रह से काम लिया। लौकिक सुविधा और भौतिक समृद्धि की आकांक्षा इन्हें बहुतायत से आकर्षित न कर सकी। इसका मूल कारण मध्ययुगीन संत-चेतना थी। रैदास जिसके जगमगाते माणिक्य थे।[5]

निम्न जाति में उत्पन्न उच्चतम संस्कारों से अभिमंडित रैदास ने सामाजिक क्षेत्र में जो सबसे बड़ी क्रान्ति की, वह थी युग-युग से चलने वाले अस्पृश्य जन-समाज को नैतिकता का वह सम्बल प्रदान करना, जिससे वह जन-सामान्य के मध्य खड़ा हो सके। तत्कालीन सन्तों ने साधारण वर्ग में उत्पन्न होने पर भी अपने पवित्र उज्ज्वल और कर्मठ जीवन से यह सिद्ध कर दिया कि किसी भी जाति में जन्म लेने से व्यक्ति ऊँचा और नीचा नहीं हो सकता। उसकी गरिमा की कसौटी उसका चिंतन, आचरण और उसके कर्म ही हैं। इसीलिए मध्ययुगीन भारत के सबसे प्रभावोत्पादक नेता नामदेव, कबीर, सैन, साधना और रैदास हुए हैं। न तो उस युग के

५. धर्मपाल मैनी, 'रैदास', नई दिल्ली, साहित्य अकादेमी, प्र.सं. १९७९, पृ. ३८

www.thearyasamaj.org

राजनैतिक नेता समाज के अग्रणी बन सके और न ही आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न धनाढ्य इस पद को ग्रहण कर सके। आडम्बरवादी की चाहे वे पुजारी थे या मौलवी उनकी दुर्दशा तो पहले ही देखी जा चुकी है। इस प्रकार जन्म, जाति, कर्म, व्यवसाय आदि का न तो प्रेमाभक्ति से ही कोई सम्बन्ध जुड़ सका और न समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले व्यक्ति से। उस युग में निवृत्ति पर आधारित प्रवृत्तिमय जीवन बिताने वाला भावपूर्ण भक्त ही समाज का सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति था। उसकी तुलना में कोई भी राजा महाराजा या अन्य अपने को श्रेष्ठ समझने वाला खड़ा नहीं हो सकता था क्योंकि पवित्र होकर न वह अपने आप भवसागर से पार हो जाता था अपितु जनसामान्य का भी उद्धार कर देता था। इसलिए उसके नाम, गाँव और काम सभी को रैदास ने धन्य बताया है-

पंडित सूर छत्रपति राजा भगत बराबरि अउरू न कोई।
जैसे पुँरन पात रहै जल समीप भनि रविदास जनमें जगि ओइ।।[६]

"रविदास जी के समय में भारत राजनीतिक दृष्टि से तो गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था ही, जाति-पांति, ऊँच-नीच, धार्मिक संकीर्णता और वर्ग विभाजन के जाल में भी बुरी तरह फँसा हुआ था। एक ओर भारतीय विदेशी शासन के जुल्म की चक्की में पिस रहे थे, तो दूसरी ओर पुजारी तथा मौलवी पारस्परिक मतभेद पैदा कर रहे थे। जिसके कारण समाज में धार्मिक कट्टरता जाति-पाँति भेदभाव से पारस्परिक घृणा, विद्वेष की भावना हद से ज्यादा उत्पन्न हो रही थी या हो गई थी। कबीर तथा रविदास ने यह सब कुछ देखा और उसको दूर करने के लिए उनके हृदय में पवित्र वाणी का उदय हुआ और उन्होंने अपने पावन राष्ट्र भारत को अंधविश्वासों, मिथ्याचारों, आर्थिक विषमताओं, सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक आडम्बरों से मुक्त करने का संकल्प लिया और इस दिशा में समाज सुधारक रविदास ने अपनी कथनी और करनी के माध्यम से वह कुछ कर दिखाया, जो बड़े-बड़े आन्दोलनों और क्रान्तियों द्वारा ही संभव हुआ।"[७]

संत रैदास ने न केवल वसुधैव कुटुम्बकम् के सिद्धान्त को अपनाया, अपितु इस बात को भी स्पष्ट किया कि सम्पूर्ण विश्व उस एक सत्ता से उत्पन्न होने से सभी समान हैं केवल नाम और रूप मात्र का भेद है। वह प्रभु सब में होने से सभी प्राणी समान हैं, इसमें चाहे कोई ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो या शुद्र हो कोई भेद नहीं। वे कहते हैं-

ऐंक माटी के सभ भांडे, सभ का एको सिरजन हारा।
रविदास व्यापै एको घट भीतर प्रभकौ एकै घडै कुम्हारा।।
नीच-नीच कह मारहिं, जानत नाहिं नदान
सच का सिरजनहार है, रविदास एकै भगवान।।

इस प्रकार रविदास जी की लोक-चेतना साधारण जनता को जगाने वाली थी।

-प्रवक्ता, हिन्दी (गेस्ट) सरकारी कॉलेज, सैक्टर-2, पंचकुला (हरियाणा)

६. धर्मपाल मैनी, 'रैदास', नई दिल्ली, साहित्य अकादेमी, प्रा.सं. १९७९, पृ. ४१
७. प्रो. संतोष शर्मा (सं.) सौम्य संत गुरु रविदास, चंडीगढ़ पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब विश्वविद्यालय,

www.thearyasamaj.org

मातृदेवो भव

– डॉ. मुकेश कुमार

भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से ही माता का स्थान महत्वपूर्ण एवं गरिमायुक्त रहा है। वह पारिवारिक जीवन की अटूट कड़ी है, जिससे परिवार के समस्त सदस्य जुड़े हैं। ऋग्वेद में माता के महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए कहा गया है कि पिता-रूप द्युलोक से माता-रूप पृथिवी जल को ग्रहण करती है और उससे पिता द्युलोक और पुत्र प्रजा दोनों की वृद्धि होती है- **पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः**[१]।

वेद में पृथिवी अदिति सोम आदि को स्नेह के लिए माता की उपमा दी गई है। कुछ अवसरों पर वह पिता से अधिक माननीय और प्रतिष्ठा युक्त है। सन्तान को भी पिता की तुलना में माता से अधिक अपनत्व होता है। नौ माह पेट में धारण करने के कारण माता का भी अपनी संतान से अधिक मोह हो जाता है। परिवार की संरचना में माता का अभूतपूर्व योगदान होता है। जो उसकी घनिष्ठता, अपनत्व, उत्सर्ग और स्नेह का प्रतीक है। अथर्ववेद के एक मंत्र में पुत्र को आदेश दिया गया है कि वह सदा माता के अनुकूल आचरण करे- **मात्रा भवतु संमनाः**[२]।

प्राचीनकाल से माता की उत्कृष्ठता के कारण ही आचार्य शिक्षा समाप्ति पर ब्रह्मचारी को माता की देवतातुल्य पूजा करने का उपदेश देता है- **मातृदेवो भव।**[३] निर्माण और संवृद्धि से माता का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

संतान का लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा और भरण-पोषण उसी से होता है। स्वामी दयानंद कहते हैं कि **माता निर्मात्री भवति** अर्थात् माता संतान का सर्वविध निर्माण करने वाली होती है। वेदों में माता का अभिनन्दन करते हुए कहा गया है कि ईश्वर पूजा में पिता के साथ-साथ माता के नाम का भी स्मरण किया जाय। उसकी प्रतिष्ठा और गरिमा ऐसी है कि वह व्यवहार में सदा पिता शब्द से पहले स्मरण की जाती है। शास्त्रों का कथन है कि **मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद (शतपथ ब्राह्मण)** सुशिक्षित और संस्कारित मनुष्य ही ज्ञानवान् बनता है।

१. ऋग्वेद, ७.१०१.३
२. अथर्ववेद, ३.३०,२
३. तैत्तिरीय उप०- १/११

www.thearyasamaj.org

स्वामी दयानन्द सत्यार्थप्रकाश[४] में लिखते हैं कि वह कुल धन्य है, वह सन्तान बड़ी भाग्यवान् है। जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तान को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जितना माता सन्तान से प्रेम और उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता। इसलिए **मातृमान्** अर्थात् (**प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य सः मातृमान्**) आचार्य और पिता से माता का स्थान सर्वप्रथम रखा गया है रामायण में राम की माता कौशल्या के मातृ रूप में भव्यता और दिव्यता सराहनीय है। परिवार और संतान के प्रति उसके कर्तव्य और उत्सर्ग उल्लेखनीय हैं।

धर्मशास्त्रों में माता को श्रेष्ठ गुरु कहा गया है। धर्मशास्त्रकारों की मान्यता है कि सौ आचार्यों से बढ़कर पिता होता है और एक हजार पिताओं से अधिक महत्वपूर्ण स्थान माता का है।[५] आपस्तम्ब, बौधायन और वसिष्ठ आदि धर्मशास्त्रकारों ने माता की प्रतिष्ठा और महिमा पिता से भी अधिक मानते हुए लिखा है कि पतित पिता को छोड़ा जा सकता है किन्तु माँ नही छोड़ी जा सकती है।महाभारत में माता के लिए कहा गया है कि माता जैसी छाया, आश्रय-स्थल, रक्षा-स्थान और प्रिय वस्तु कोई नहीं है।

मानव के जीवन निर्माण में सर्वोपरि एवं सर्वप्रथम स्थान माता का है। नौ महीने तक माता के अंग-अंग से बालक के अंग-प्रत्यंगों का निर्माण एवं पोषण होता है। माता सात्विक आहार एवं उच्च विचारों से बालक के मन-मस्तिष्क को परिपुष्ट कर उन्नत बनाती है।

आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।[६]

गर्भ में बालक के जो संस्कार बनते हैं वे आजीवन प्रबल होते हैं। महाभारत काल में अभिमन्यु ने माँ के गर्भ से ही चक्रव्यूह का भेदन सीखा था। माँ का गर्भ और गोद जीवन निर्माण की वह आधारशिला है जिसके समान विश्व का कोई भी विश्वविद्यालय मायने नहीं रखता। स्वामी विवेकानन्द ने अपनी माता की गोद को आध्यात्मिक जीवन को बनाने वाली यूनिवर्सिटी कहा था। नीतिकारों का तो यहाँ तक मानना है कि आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु- ये पाँच चीजें माँ के गर्भ में रची जाती हैं।

नारी जन्मदात्री ही नहीं अपितु जीवन-निर्मात्री भी है। माँ संस्कार के रूप में जीवन की आधारशिला को प्रतिष्ठित करती है। माता मदालसा इसका जीवन्त उदाहरण है। जिसने गोद में अपने रोते हुए पुत्र को ''तू शुद्ध है, तू बुद्ध है, तू निरंजन है, निर्विकार है। तू माया से भिन्न है, मायिक नहीं है। तू पंच तत्वों से निर्मित देह नहीं है, यह नाम तो काल्पनिक है। इसलिये हे वत्स! चुप रह

४. सत्यार्थ प्रकाश (द्वितीय समुल्लास) पृ०-२०

५. मनु०- २/१४५, २/१३३, याज्ञ०- १/३५

६. छान्दोग्यो० ७.२६,२

www.thearyasamaj.org

और इन बातों पर विचार कर-
शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि,
संसारमायापरिवर्जितोऽसि।[७]

लोरियाँ सुना वैराग्ययुक्त संस्कार प्रदान कर तीन बालक वैराग्यवान् बना दिये। अन्त में राजा की इच्छा का मान रखते हुए चौथे बालक को लोरी के रूप में हे वत्स! तू क्यों रोता है? संसार में जो कुछ भी है- तेरा ही तो है, तुझे क्या कमी है ? वत्स! रोना नहीं राज्य करते हुए सुहृदों को प्रसन्न रखना, साधुओं की रक्षा करना, यज्ञों का सम्पादन करना, दुष्टों का दमन करना तथा गो, ब्राह्मणों की रक्षा के लिए प्राणों का उत्सर्ग करने की आवश्यकता हो तो प्राणों का भी मोह मत करना आदि सुनाकर बालक को शूरवीर, युद्धकला में पूर्ण राजनीति में कुशल कर राजगद्दी का उत्तराधिकारी बना दिया। मध्यकाल में माता जीजाबाई ने वीरता, साहस आदि गुणों से युक्त कर शिवाजी को छत्रपति बना दिया, जिसने मुगलों के छक्के छुड़ा दिये थे।

नारी को नरक का द्वार कहने वाले महान् तार्किक ब्रह्मवादी आचार्य शंकर को भी अपना विचार बदलना पड़ा था उन्होंने अपनी माता की मृत्यु पर उसकी प्रसंशा करते हुए यह स्वीकार किया है कि प्रसूति के समय उदरशूल की वेदना, लालन-पालन में होने वाले कष्ट आदि किसी एक का भी बदला (ऋण) पुत्र नहीं चुका सकता। यजुर्वेद के एक मन्त्र में सन्तति को जन्म देने वाली पत्नी को नमन योग्य कहकर जननी की महत्ता को प्रदर्शित किया गया है।[८]

राष्ट्रसन्त जैनमुनि पुलक सागर लिखते हैं कि जो आशीर्वाद सन्त की दुआ में होता है, वही आशीर्वाद माँ-बाप की दुआ में हुआ करता है-

जिसे देखो वो दगा देता है,
दोस्त बनकर के सजा देता है,
माँ का दिल है इस दुनिया में,
वरना मुफ्त में यहां कौन दुआ देता है।
माँ तमाम बुराईयों से हमें बचाती है।
आचरण के लिए अपने आंचल में पनाह देती है।[९]

इस प्रकार वेद से लेकर लोक तक जितना भी शास्त्र प्राप्त है, उसमें माता का स्थान सर्वोपरि है। भगवान् राम द्वारा लक्ष्मण को कहे गए ये शब्द भी मां की महिमा का ही वर्ण करते हैं- **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।**

- संस्कृत विभाग, एल.एस.एम. राजकीय स्ना.महाविद्यालय, पिथौरागढ (उत्तराखण्ड)

७. मार्कण्डेय पुराण - २६/४१
८. यजुर्वेद- १२/३५
९. सर्वस्व (भाग-२) मुनि पुलक सागर, पृ० २६१

www.thearyasamaj.org

तन्त्रागमीय तत्त्वसृष्टि में शिव एवं शक्ति

– डॉ० सुधांशु कुमार षडङ्गी

काश्मीर शैवदर्शन परमशिव को ही एकमात्र तत्त्व के रूप से स्वीकार करने के कारण अद्वैतमत वाला है। शिव ही सब कुछ है, इससे भिन्न कुछ भी नहीं है। यह ही विश्वोत्तीर्ण तथा विश्वमय उभयस्वरूप वाला है। समग्र प्रपञ्च शिव का ही उन्मीलन मात्र है। यह अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से अन्त:स्थित विश्व का उन्मीलन करता है। यह उन्मीलन उस प्रकाशवपु शिव से भिन्न नहीं है। अपितु उससे सतत अभिन्न रहते हुए अभिव्यक्त मात्र होता है। क्योंकि व्यक्तावस्था में भी यह प्रपञ्च सदैव शिवमय ही बना रहता है। शिव और सृष्टि का सम्बन्ध सागर तथा उसकी लहरों के सदृश है। जैसे निस्तरङ्ग समुद्र स्वकीय जलराशि को असङ्ख्य लहरों में आभासित करता है, वैसे ही प्रकाशवपु परमशिव अपनी अखण्ड प्रकाशरूपता के अन्तर्गत स्वकीय स्पन्दरूप इच्छाशक्ति को उल्लसित करके अपने विश्वातीत स्वरूप को ही विश्वमय रूप से आभासित करता है। जैसें समुद्र की जलराशि से पूर्णत: अभिन्न होते हुए भी तरङ्ग के रूपसे भिन्न प्रतीत होती है, उसी प्रकार विश्वरूप से भासमान प्रकाशवपु अपने आधारभूत विश्वोत्तीर्ण स्वरूप से सर्वथा अभिन्न होते हुए भी प्रमाता-प्रमेय आदि के रूप से परस्पर भिन्नवत् अभिव्यक्त होता है।

यहाँ पर शिव और जगत् में तात्त्विकरूप से अभेद होते हुए भी स्वरूपगत भेद विद्यमान है। यह जगत् शिवमय है, परन्तु साक्षात् शिव नहीं है। इनके मध्य अखण्ड एकत्व को स्थापित करने हेतु इस जगत् को शिव का आभास माना जाता है। इसी कारण यह दर्शन आभासवाद को स्वीकार करता है। जगत् से शिव के तात्त्विक अखण्ड एकत्व के प्रदर्शन हेतु कहा जाता है कि जगत् शिव का प्रतिबिम्ब है। यहीं जगत् और शिव का भेद देखा जा सकता है। यह प्रतिबिम्ब परोक्षरूप से बिम्ब ही है, परन्तु प्रतिबिम्ब सर्वथा बिम्ब नहीं है। बिम्ब वस्तुसत् है परन्तु प्रतिबिम्ब आभास। अत: यह जगत् तात्त्विकदृष्टि से शिव होने पर भी सत्ता की दृष्टि से शिव का आभासमात्र है। शिव से जगत् की अभिव्यक्ति निम्न ३६ तत्त्वों के रूप से होती है- शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहङ्कार, मनस्, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु:, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी।

यह सृष्टि दो प्रकार से प्रस्फुटित होती है शुद्ध और अशुद्ध। इन दोनों में से शिवतत्त्व से

www.thearyasamaj.org

लेकर शुद्धविद्या तत्त्व तक की सृष्टि शुद्ध सृष्टि कहलाती है। यह शुद्ध अध्वा के नाम से भी जानी जाती है। इस शुद्ध अध्वा की स्थिति में चेतना को अपने स्वरूप का अन्यथा ज्ञान नहीं रहता । वहाँ शुद्ध संवित्स्वरूप को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान रहता है। शुद्ध सृष्टि तक परमशिव से अभेदभाव की अनुभूति बनी रहती है। इन पाँच तत्त्वों तक की इस शुद्ध सृष्टि पर माया का कोई प्रभाव नहीं रहता। माया से लेकर पृथिवी तत्त्व तक की सृष्टि अशुद्ध सृष्टि कहलाती है। इसे अशुद्ध अध्वा भी कहा जाता है। माया से प्रभावित होकर ये तत्त्व संकुचित हो जाते हैं, जिससे वे अपनी सर्वज्ञता तथा सर्वशक्तिमत्तादि गुणों को न जान कर संकुचित औपाधिक स्वरूप को ही शिव समझने लगते हैं।

शिव तत्त्व:-

इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति स्वरूप केवल पूर्ण आनन्द से युक्त परमशिव ही शिवतत्त्व है।[१] इस शिवतत्त्व की द्विविध व्याख्या कर सकते हैं। जैसे- विश्वोत्तीर्ण स्वरूप और विश्वमय स्वरूप से। विश्वोत्तीर्णस्वरूप से परमशिवभट्टारक एक ही है। आत्मा चित्स्वरूपवाला है तथा यह सर्वदा प्रकाशस्वरूपक है। चूँकि भेद देश, कालादि से सम्भव होता है तथा यह प्रकाश में नहीं हो सकता। यद्यपि भेद जड में सम्भव है तथापि उसमें ग्राहकता की अनुपपत्ति हो जाएगी। अत: यह विश्वोत्तीर्णस्वरूप सर्वदा प्रकाशस्वरूपक है। इसमें भेद का अभाव होने के कारण परमशिवभट्टारकरूप ग्राहक के रूप से एक है। परन्तु इसका द्वितीय विश्वमयत्वरूप सृष्टि की सिसृक्षाजनित है। षट्त्रिंशत्तत्त्वसंदोह के अनुसार यह शिवतत्त्व परमशिवभट्टारक का प्रथमस्पन्द है। इस तत्त्व में चितिशक्ति का प्राधान्य रहता है। यह शुद्ध 'अहम्' के अनुभव की अवस्था है। इस अवस्था में प्रमेय का सर्वथा अभाव रहता है। शिवतत्त्व को ही परा संवित्, परमेश्वर, शिव या परमशिव आदि भी कहा जाता है। यह शिव विश्वोत्तीर्ण तथा विश्वमय उभय स्वरूपवाला है। दार्शनिक विश्वोत्तीर्ण अवस्था को विश्वमयता से भिन्न मानकर ३७ तत्त्वों को स्वीकार करते हैं। परन्तु हमारे मत में यह असमीचीन होगा। क्योंकि यहाँ सृष्टि कोई नव्य सर्जन नहीं है, अपितु परमशिव की विश्वरूपसे अभिव्यक्ति मात्र है।

शक्ति तत्त्व :-

यह शक्ति परमशिव की विश्वमयता में द्वितीय तत्त्व है तथा शिव से अभिन्न है दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध है। इस सम्प्रदाय में बाह्योन्मुख परमशिवभट्टारक की उन्मुखतारूप क्रिया ही शक्ति तत्त्व है। यह क्रियात्मक इच्छा ही परमशिव में अभिन्न रूप से रहने वाली शुद्धशक्ति है। यह ही उसके स्वरूप में तादात्म्य भाव से रहने वाले सम्पूर्ण चराचर जगत् का बीज है।[२]

सदाशिव से लेकर भूमि पर्यन्त तत्त्वों की सृष्टि, स्थिति और संहार में परम शिवतत्त्व की शक्ति चिति कारण है। यह चितिशक्ति

१. तत्र शिवतत्त्वं नाम इच्छाज्ञानक्रियात्मक-केवल-पूर्णानन्दस्वभावरूप: परमशिव एव। (पराप्रावेशिका)
२. ष०त०स०, २

www.thearyasamaj.org

पराशक्ति है। यह चितिशक्ति सर्वोच्च शक्तिरूपा है। किसी कार्य की निष्पत्ति में सामर्थ्य को शक्ति कहा जाता है। शक्तिमान् ही शक्ति से स्वकीय कार्य का निर्माण करता है। इस वैचित्र्यपूर्ण संसार का निर्माण परमशिव ने चितिशक्ति से किया है। यह शक्ति ही उस तत्त्व का सामर्थ्य है। इसलिए पराशक्ति कही जाती है। इसी शक्ति के अधीन होते हुए अन्य शक्तियाँ प्रपञ्च का कार्य सम्पन्न करती हैं। यह शक्ति किसी के अधीन न रहकर स्वयं समग्र प्रपञ्च का निर्माण करती है। यह शक्ति अपनी इच्छा से किसी भी उपादान कारण की अपेक्षा किये विना बाह्यदेश में प्रसृत हो जाती है। मालिनीतन्त्र के अनुसार परमशिव की इच्छाशक्ति ही उसका स्वातन्त्र्य है।[3]

परमशिवभट्टारक उसी स्वातन्त्र्य का विमर्शन करता हुआ जब उसके प्रति उन्मुख होता है, तो वह सृष्टि के रूप में अपने को अभिव्यक्त करना चाहता है। तब वह अपने प्रकाश के भीतर ही अप्रतिबन्धित इच्छा से शक्तियों के प्रतिविम्बों को प्रकाशित कर देता है। वे ही शक्तियाँ सृष्टि, स्थिति और संहार के रूप में प्रकट हो जाती हैं। इसलिए यह स्वातन्त्र्यरूपा चिति ही भेदात्मक जगत् का अनन्य हेतु है। यह शक्ति समस्त ऐश्वर्यों से विभूषित तथा श्रेष्ठ है, अत: भगवती है। तथा परमशिव अर्थात् जगत् के भर्त्ता से अभिन्न है। अत: यह शिवाद्वय ही है। यह चितिशक्ति अनुत्तरविमर्शमयी है। अर्थात् जिससे अधिक कुछ न हो। यह अनुत्तर परम धाम तथा अकुल के नाम से जाना जाता है। सम्पूर्ण जागतिक प्रपञ्च उसी से अभिव्यक्त तथा विलय भी हो जाता है। यह शक्ति कौलिकी-शक्ति भी कही जाती है। स्वातन्त्र्य और विसर्ग शक्ति से युक्त होकर वही अनुत्तर परमशिव विश्वरूप कहलाते हैं। ये दोनों शक्तियाँ अनुत्तरा कही जाती है। विसर्गलीला की परिसमाप्ति के पश्चात् यह अनुत्तरा उसी अनुत्तर में विलीन हो जाती है। भास्कराचार्य ने इसे वाच्यतासह कहा है। इसके इसी स्वरूप के कारण साधक की बाह्य तथा आभ्यन्तर इन्द्रियाँ वहाँ तक पहुँच नहीं पाती। केवल परमेश्वर की चितिशक्ति ही उसके आमर्श की क्षमता रखती है। काश्मीर शैवदर्शन में कुछ स्थलों पर परमशिव के प्रथमस्पन्द के रूप से कहीं-कहीं शिव को तो कहीं-कहीं शक्ति को माना गया है। पराप्रावेशिका में आचार्य क्षेमराज जी ने शक्ति तत्त्व को ही परमशिव का प्रथमस्पन्द माना है।[4]

त्रिक शास्त्रों में विश्वोत्तीर्ण और विश्वमय होने में परमशिवतत्त्व की इच्छा शक्ति को कारण माना गया है। स्वतन्त्र होने के कारण विश्वरूप में अपने आपको विस्तारित करके विश्वमय हो जाता है और अपनी इच्छा से सबका संहार करते हुए विश्वोत्तीर्ण होकर अद्वयरूप में स्थित हो जाता है। विश्वोत्तीर्ण रूप में परमशिव प्रकाश प्रधान है और विश्वरूप में विमर्श प्रधान है। यहाँ विश्व का प्रकाश और विश्व का संहार के द्वारा अहं का अकृत्रिम स्फुरण ही विमर्श है। यह विमर्श ही शक्ति है।

३. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका, १/५/७

४. अस्य जगत्स्रष्टुमिच्छं परिगृहीतवत: परमेश्वरस्य प्रथमस्पन्द एवेच्छा शक्तितत्त्वम्। (पराप्रावेशिका)

www.thearyasamaj.org

यह अनुत्तरतत्त्व ज्ञान और क्रिया का समावेशरूप है। यह ही प्रकाश-विमर्शात्मक सामरस्य है। अत: इस प्रकाशक परमशिव तत्त्व के साथ अपने अभेद को दिखाने वाली अनुत्तरविमर्शमयी पराशक्तिरूपा चितिशक्ति समग्र जागतिक प्रपञ्च की सिद्धि में कारण है। नित्यषोडशिकार्णव के अनुसार ब्रह्म-विष्णु-महेश्वररूपिणी पारमेश्वरी परमा शक्ति त्रिपुरा ही विमर्श है।यह विमर्शशक्ति ३६ तत्त्वों के रूप में परिणत हो जाती है। इदम् प्रत्यय का संवेदन ही विमर्श है, वस्तुत: प्रकाशस्वरूपात्मक शिव का विमर्श ही स्वभाव है। सृष्टि की अवस्था में विश्वाकार होने से, स्थिति की अवस्था में विश्व को प्रकाशित करने से तथा संहार की अवस्था में विश्व को आत्मसात् करने से शिव में जो पूर्ण अकृत्रिम अहम्भाव है वही विमर्श है। यह विमर्श शिव की अपनी शक्ति है।

यह चितिशक्ति पराशक्तिरूपा होने के कारण परमशिवतत्त्व की सृष्टि आदि क्रियाओं के साथ कर्त्ता बन जाती है। परमशिव इसीं शक्ति से जागतिक प्रपञ्च का निर्माण तथा संहार करता है। अनुत्तर शिवतत्त्व से अभिन्न होने के कारण यह चितिशक्ति सृष्टि आदि की कल्पना करतीं है। अत: कहा है कि इस चिति शक्ति के प्रसृत होने पर ही जगत् का उन्मेष होता है। अर्थात् सम्पूर्ण जगत् चितिशक्ति से ही अभिव्यक्त अर्थात् प्रकाशित होता है। इसी चितिशक्ति के प्रसृत होने तक जागतिक प्रपञ्च स्थिति दशा को प्राप्त किये रहता है जब यह प्रसृत नहीं होती है, तब सम्पूर्ण जागतिक प्रपञ्च विलय दशा को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार चितिशक्ति के प्रसृत होने पर यह जगत् उत्पन्न तथा स्थित होता है और निवृत्त होने पर संहार दशा को प्राप्त कर जाता है। इसमें स्वानुभव ही प्रमाणसाक्षिक है।

इस सम्पूर्ण जागतिक प्रपञ्च का कारण माया, प्रकृति आदि तत्त्व नहीं हो सकते। क्योंकि ये चित्प्रकाश से भिन्न हैं। अनुत्तर शिव के साथ ये एकरूपता को प्राप्त नहीं करते। इसलिए ये प्रकाशमानस्वरूपक नहीं होते । इसीं कारण असत् भी हैं। इसलिए इनका जगत्कारणत्व स्वीकार नहीं किया जा सकता है। परन्तु अनुत्तरा यह चितिशक्ति का अनुत्तर शिवतत्त्व के साथ अभेद है। अनुत्तर के प्रकाशमानत्व होने से यह चिति भी प्रकाशरूपा है। इससे ही समस्त जगत् का प्रसरण होता है। अत: प्रकाशस्वरूपवाली चितिशक्ति ही विश्व की सिद्धि में हेतु है। माया, प्रकृति आदि विश्व की सिद्धि में कथमपि हेतु नहीं हो सकते हैं। समग्र देश, काल तथा आकार इस चितिशक्ति से सृष्ट तथा अनुप्राणित है। अत: देश, काल तथा आकार से अवच्छिन्न कोई भी इसके स्वरूप को भेदन करने में समर्थ नहीं हो सकता है। अत: यह चिति देश, काल तथा आकार आदि में व्याप्त है। यह नित्योदित है। क्योंकि मूल चेतना होने के कारण इसका अस्त कभी नहीं होता अर्थात् सदा स्पन्द में वर्त्तमान रहते

www.thearyasamaj.org

हुए क्रियाशील रहती है। अत: समग्र प्रपञ्च का हेतु है।

परमतत्त्व से भिन्न यह जगत् कुछ नहीं है। अत: प्रत्यभिज्ञा दार्शनिकों ने इसे शिवाद्वय माना है। अनुत्तर शिव और अनुत्तरा शक्ति में अभेद ही है। यह शिव स्वकीय अभेदात्मना शक्ति से जगत् का प्रकाशन करता है। परन्तु सिद्धान्त रूप से जब यह जगत् चित् से अभिन्न होते हुए अभिव्यक्त होता है, तब दोनों में भेदबुद्धि का अभाव होता है। इस कारण इन दोनों में कार्य और कारण की सत्ता नहीं बन पाएगी।

इसके समाधान में यह कहा जाता है कि भगवती चितिशक्ति स्वच्छ तथा स्वतन्त्र स्वरूपवाली है। इस चितिशक्ति में भेदतत्त्व का मिश्रण न होने से यह स्वच्छ तथा सृष्टि आदि क्रिया की निष्पत्ति स्वयं करने से स्वतन्त्र है। अत: यह चितिशक्ति अनन्त जागतिक स्वरूप में अभिव्यक्त हो जाती है। एक होने पर भी अनेक घट, पटादि स्वरूपों में स्फुरित होती है। इस प्रकार यह ही पारमार्थिक कार्यकारणभाव है। लौकिक कार्यकारण की सत्ता में क्रम होता है। क्रम के कारण ही कार्य से कारण की पृथक् सत्ता विद्यमान रहती है। परन्तु यहाँ पर यह क्रम सम्भव नहीं है। क्योंकि चित् का जागतिक स्वरूप में अभिव्यक्त होना उन्मेष है। उन्मेष और चितिशक्ति के एकसाथ विद्यमान होने से क्रम का अभाव है। प्रमाण, प्रमाता और प्रमेय स्वरूप विश्व की अभिव्यक्ति में चिति ही कारण है। अत: सिद्ध होता है कि चितिशक्ति देश, काल तथा आकारादि से अपरिच्छिन्न है, स्वप्रकाश स्वरूपवाली है उसकी सिद्धि में लौकिक प्रमाण अनुपयुक्त है। क्योंकि त्रिकसार नामक पुस्तक में कहा गया है कि कोई भी मनुष्य जिस प्रकार अपने पैर से सिर के छाया को लाँघने की इच्छा करते हुए भी पैर से छाया को लाँघ नहीं सकता, उसी प्रकार वैन्दवी कला है। अर्थात् अपनी तुच्छ इन्द्रियों से उस वैन्दवी कला चितिशक्ति का पूर्णज्ञान नहीं कर सकते। यह वैन्दवी कला ही चितिशक्ति है। यह कला शक्ति का अपर नाम है। अत: उस विन्दु की शक्ति वैन्दवी कला है। तन्त्रालोक के अनुसार

अविभाग: प्रकाशो य: स: विन्दु: परमो हि न:।

वस्तुत: यहाँ पर चितिशक्ति की महत्ता को दिखाया गया है। इस ज्ञान का किसी भी प्रमाण से नहीं हो सकता है। अत: कह सकते हैं कि यह समग्र प्रपञ्च परम शिवभट्टारक से अभेदात्मना स्फुरित होती है, जिसमें साक्षात् चिति शक्ति ही कारण है। इसलिए चिति-शक्ति के प्रकाशवपु से अभिन्न न होने के कारण भी शिव और शक्ति ही जागतिक प्रपञ्च के मूल कारण हैं।

-सहाचार्य, विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान,पञ्जाब विश्वविद्यालय,
साधु आश्रम, होशियारपुर, (पञ्जाब)

www.thearyasamaj.org

तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी सन्त कबीर (दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में)

– प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

विश्वज्योति (६५, ३-४) अंक से आगे-

कबीर ने जहाँ समाज में प्रचलित बुराइयों को दूर करने के लिए सरल साधारण भाषा का उपयोग करते हुए, लोकगत दृष्टान्त के आधार पर साधारण जनता को समझाने का प्रयत्न किया और वे उसमें सफल भी हुए, वहीं शास्त्रगत नाना वाद-विवाद के चक्कर में न पड़कर बड़े-बड़े दार्शनिकों के खण्डन-मण्डन का सहारा न लेकर, शास्त्रीय परम्परा से हटकर, दार्शनिक-सिद्धान्तों को भी लौकिक घटनाओं से या आम प्रचलित प्राकृतिक उदाहरणों द्वारा ही समाज को समझाने का प्रयत्न किया। उन्होंने आत्मा-परमात्मा, जीव-माया, सृष्टि इत्यादि जैसे गहन विषयों को भी लोकघटित घटनाओं या प्रकृतिगत दृश्यों के द्वारा ही समझाने का प्रयत्न किया, जिससे साधारण से साधारण जनता की समझ में वे रहस्य आ जाँये, जिनको समझाने में विद्वानों, दार्शनिक-भाष्यकारों और बड़े-बड़े दार्शनिकों को गम्भीर चिन्तन करते हुए अनेकों ग्रन्थ लिखने पड़े। उदाहरण के रूप में कतिपय सिद्धान्त इस प्रकार भी उद्धृत किए जा सकते हैं-

माया-

माया की महिमा का बखान करते-करते अनेक दार्शनिकों के द्वारा न जाने कितने-कितने ग्रन्थ लिखे गए तथा लिखे जा रहे हैं, वे सभी ग्रन्थ अच्छे-अच्छे विद्वानों के लिए भी माया जैसे ही कठिन हैं, क्योंकि उनकी माया अपार ही है। किन्तु कबीर का तो कहना यही है कि-तुम सब कागज (शास्त्रों) की उन बातों को कहते हो, जिनको समझने के लिए शास्त्रीय ज्ञान होना आवश्यक है। ठीक है, शास्त्रों द्वारा विद्वान् तो माया के रहस्य को समझ लेगें पर मैं साधारण जनता को कहता हूँ कि शास्त्रों की बातें विद्वानों के लिए रहने दो, आप किसानों के खेत में जाओ, खेत के चारों ओर उसकी रक्षा के लिए किसान द्वारा की गई कंटीली बाड़ को देखो और उस बाड़ पर स्वत: जमीन में उत्पन्न होने वाली दोला बेल को देखो, जो उस पर बिना प्रयत्न के चढ़ गई। वह तुम्हें स्पष्ट करेगी कि माया क्या है? वे उसी बेल को आधार मानते हुए माया की परिभाषा करते हैं-

www.thearyasamaj.org

बाड़ि चढती बेलि ज्यूँ, उलझी आसा कंध।
तूटै पणि छूटै नहिं, भई जो बाधा बन्ध।।

प्राय: किसान खेत की रक्षा के लिए कंटीली बाड़ कर देते हैं। उसके पास ही जब कोई बेल उगती है तो वह उस बाड़ के कांटों को जकड़कर आगे बढती जाती है और कांटों को जकड़ कर पकड़ लेती है। किसान जब उस बेल को काटकर अलग करना चाहता है तो चाहे बेल कट भी जाय और उस के तन्तु टूट भले ही जायें पर बाड़ को नहीं छोड़ते। कबीर कहते हैं कि- इसी प्रकार जीव भी माया के आशारूपी पाश में ऐसा जकड़ा जाता है और विषयरूपी कांटो से ऐसा जकड़ा जाता है कि प्रयत्न करने पर भी वह उससे अलग नहीं हो सकता। महाभारत में भगवान् व्यास ने भी इसी ओर संकेत करते हुए कहा कि- "युद्ध में भीष्मपितामह के स्वत: हट जाने पर, द्रोण के मारे जाने पर, कर्ण के भी भूमिगत होने पर शल्य महाभारत का युद्ध जीत लेगा, दुर्योधन को ऐसी आशा है"। इससे स्पष्ट है कि आशा कितनी बलवती है। कबीर की आँखों देखी बेल तथा काटों वाली यही घटना सबकी आँखों के सामने होने से भी सभी की समझ में आ जाती है और माया की महिमा भी झटसे समझ में आ जाती है

ब्रह्म तथा जीव-

'दार्शनिकों द्वारा 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्म एव नापर:' ब्रह्म ही सत्य है, यह सम्पूर्ण प्रपञ्च मिथ्या है जीव और ब्रह्म एक ही हैं, "दो नहीं, दो तो केवल नाममात्र से हैं"। इसको लेकर द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत त्रैत आदि अनेक वाद दार्शनिकों में प्रचलित हैं। आचार्य शंकर ने इसी को समक्ष रखकर अद्वैतवेदान्त की स्थापना करके ब्रह्म को ही एकमात्र तत्त्व मान कर, सृष्टि रचना की प्रक्रिया प्रदर्शित की और कहा कि ब्रह्म और जीव भिन्न नहीं एक ही हैं, भिन्नता तो माया के कारण है। जैसे कुम्हार एक ही मिट्टी से घड़ा, सकोरा दीपक इत्यादि अनेक चीजें बनाता है उन सबमें एक ही मिट्टी है, जो सभी को दिखाई दे रही है, उस मिट्टी से बनी इन सभी वस्तुओं में रूप तथा नाम मात्र का भेद है, सत्य रूप में तो सभी में केवल मिट्टी है। अन्य तो केवल नाम और रूप का भेद है तत्त्व एक ही है। इस पर अनेक ग्रन्थ लिखे गए। परन्तु कबीर दास ने चलते हुए कहीं पर तलाब में जल से भरे घड़े को तैरता देखकर ब्रह्म और जीव, जगत् तथा माया की गुत्थी को सरल भाषा में बड़े ही सरल ढंग से समझाने के लिए, तालाब में तैरते हुए उस जल से भरे घड़े का उदाहरण बताते हुए कहा कि-यहाँ देखो-

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल-जल हि समाना यह तथ कहा ज्ञानी।

यहाँ तालाब में पानी है, तालाब का ही पानी घड़े में भरा हुआ है। घड़ा तालाब के जल

www.thearyasamaj.org

में तैर रहा है। घड़े के अन्दर तालाब का ही पानी है, घड़े के बाहर भी तालाब का वहीं पानी हैं। यद्यपि घड़े के अन्दर और बाहर एक ही पानी है, पर घड़े की जो परत अर्थात् बनावट है, वह एक ही पानी को अलग-अलग किए हुए है, अगर घड़े को फोड़ दिया जाय तो घड़े के टूटने पर तो दोनों पानी एक ही हो जायेंगे और उनमें कोई भेद नहीं रहेगा। वस्तुत: पानी तो एक ही था, पर घड़े की परत ने दोनों को पृथक्-पृथक् किया हुआ था। घड़ा फूटा और दोनों एक। बस यही ब्रह्म ओर जीव में भेद है। ब्रह्म जो सर्वव्यापक चेतन है, वही प्रत्येक जीवगत चेतन है, पर माया रूपी घड़े की परत के समान बीच में भेदक है, वही दोनों को पृथक्-पृथक् दिखा रही है। जैसे घड़े के टूटते ही दोनो जल एक ही हो जाते हैं, इसी प्रकार माया के फंदे से छूटते ही, न जीव पृथक् है न आत्मा पृथक्, अपितु दोनों एक ही हैं। इतना ही नहीं वे आगे भी जीव और आत्मा की एकता को एक अन्य लौकिक दृष्टान्त से बताते हुए कहते है कि-

जल ही से था हिम भया, हिम ही गया विलाय।
कवीरा जो था सोई भया, अब कछु कहा न जाय।।

कम से कम आजकल तो इस प्रक्रिया से सभी परिचित होगें क्योंकि आधुनिक युग विज्ञान का युग है, सभी के घरों में फ्रिज हैं, शहरों में बर्फ के कारखाने भी हैं। यह जो ठोस बर्फ है, यह पहले पानी के रूप में था, ठण्ड के कारण जम कर बर्फ की अवस्था में आ गया। किन्तु गर्मी के सम्पर्क से पुन: जल के रूप में हो गया। बर्फ पहले भी पानी था, पिघलने के बाद भी पानी है परन्तु किसी कारण 'बर्फ' के रूप में दिखाई दे रहा था। ऐसे ही यह जीव पहले आत्मा (ब्रह्म) चेतन रूप था पर मायोपहित होने के कारण जीव रूप में इसकी प्रतीति होने लगी, माया के दूर होने पर, वही जीव पुन: आत्मरूप में ही स्थित होता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जीव और ब्रह्म में इसी प्रकार नाम और रूप का भेद हैं जैसे पानी और बर्फ में। इतना ही नहीं दूध और दही, मिट्टी और घड़े सकोरे, दीपक, तथा रुई और सूत में या किसी से भी बनी हुई अन्य वस्तुओं में हैं कोई भेद नहीं होता।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद ने भी अपनी प्रसिद्ध रचना कामायनी में प्रलय का वर्णन करते हुए पहाड़ों पर बर्फ तथा प्रलयकालीन जलप्रवाह को देखते हुए इसी ओर संकेत करते हुए लिखा है कि-

नीचे जल था ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन।
एक तत्त्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन (कामायनी)

अर्थात् बर्फ तथा पानी में केवल नाम-मात्र का भेद है तत्त्व तो दोनों में एक ही है। नीचे पृथ्वी पर प्रलयकारी जल है और ऊपर पहाड़ों पर ठोस बर्फ के रूप में जल। यहाँ प्रश्न

www.thearyasamaj.org

है कि यदि जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं और परमात्मा आनन्द स्वरूप है तो ऐसी अवस्था में जीव दुःखी क्यों है ? जीव आनन्दमय क्यों नहीं ? उसको भी सर्वदा आनन्दमय होना चाहिए। इस विषय में भी कबीर माया को ही कारण मानते हुए, साधारण भाषा में लोक में देखे हुए एक सर्वजनसुलभ उदाहरण के द्वारा चलते-फिरते हुए एक ऐसे व्यक्ति को समझा रहे हैं; जिसने तालाब में खिले हुए कमल के फूल को मुरझाते देखा होगा-कबीर जीव को कमलिनी का प्रतीक और ब्रह्म (चेतन, ईश्वर) को जल का प्रतीक मानते हुए कहते हैं-

काहे री नलिनी तू कुम्हलानी
तेरे ही नाल सरोवर पानी
जल में उतपति जल में वास
जल में नलिनी तोर निवास।
ना तल तपति न अपरि आगि
तोर हेतु कहु कौनसों लागि
कहे कबीर जो उदकि समाना
ते नहिं मुए हमारे जाना।

जिसका साधारण अर्थ है- हे कमलिनी! तू मुरझा क्यों रही है? तेरे मुरझाने का कारण क्या है? मैं देख रहा हूँ कि तेरी जड़ें भी पानी में हैं (अगर जड़ें पानी में न होतीं, तब तेरा मुरझाना ठीक था) तेरे निचले भाग जड़ में और उपरिभाग अर्थात् सिरे की ओर किसी प्रकार तपन अर्थात् गरम वस्तु भी नहीं है। तालाब का पानी भी एकदम तुझे ऊपर तक अर्थात् तल के अन्तिम सिरे तक घेरे हुए है अर्थात् तू जल के मध्य विराजमान है। तू जल से ही उत्पन्न हुई है, और इस समय जल में ही रह रही है। इतना ही नहीं, जल के बिना तू कभी नहीं रह सकती। जल के बिना रहना तेरा कदापि संभव नहीं, क्योंकि तेरा जीवन जलमय ही है, फिर भी तू मुरझाई- सी क्यों है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अपने उत्पत्ति, पालक और विनाश के कारणभूत इस जल के अतिरिक्त तू किसी के अन्य के सम्पर्क में आकर किसी दूसरी वस्तु से स्नेह अर्थात् प्रेम करने लग गई है। जिसके कारण तू सभी कुछ समीप होने पर भी दुःखी है। कबीर कहते हैं कि हे नलिनि ! तू एक बात सुन ले, जो अपनी उत्पत्ति, पालक और लयावस्था के कारणभूत वस्तु में स्थित रहते हैं, दूसरी तरफ किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखते, वे कभी नहीं मरते हैं और न कभी दुःखी ही होते हैं।

यहाँ कबीर ने नलिनी को जीव तथा जल को ब्रह्म का प्रतीक मानकर साधारण व्यक्तियों को उपनिषद् या दार्शनिकों के उस तत्त्व को समझाने का प्रयत्न किया है, जिसके विषय में सभी दर्शनशास्त्र विशेषकर वेदान्त और सभी उपनिषद् कहते हैं कि-

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि
जीवन्ति यत् प्रत्यभिसंविशन्ति ।।

www.thearyasamaj.org

इसी को छोटे शब्दो में कहते हैं 'तज्जलानिति उपासीत' तद्-ज-ल ये तीन शब्द हैं। जिनका अर्थ है- तद् अर्थात् उस ब्रह्म से ज- अर्थात् पैदा होकर, तत्-ल- उसी-ब्रह्म में ही लीन होना। यह जीव माया से युक्त ब्रह्म के द्वारा सत्ता में आया है। इसी को दार्शनिक भाषा में मायोपहित (माया+उपहित) चेतन भी कहते हैं, और जब वह माया से रहित (माया+हित) हो जाता है, तब पुन: उसी में लीन हो जाता है। क्योंकि सारे प्रपञ्च का मूल कारण माया है, यद्यपि ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है, पर वह अपनी शक्ति माया का आश्रय लेकर ही जीव रूप में आता है।

वस्तुत: कबीर **काहे री नलिनी तू कुम्हलानी.......** इस पद्य में दार्शनिकों के त्रैतवाद को समझाने की चेष्ठा कर रहे हैं। त्रैतवाद से तात्पर्य है- जगत् के मूलकारण तीन नित्य. तथा स्वतन्त्रतत्त्वों को मानना; वे हैं, 1. ब्रह्म, 2. प्रकृति, 3. जीव

1. ब्रह्म

त्रैतवादियों के मत में ब्रह्म चिन्मय (यहां मयत्त्मट् प्रत्यय स्वरूप अर्थ में हैं) अर्थात् चेतन, नित्य तथा आनन्द स्वरूप है। ध्यान रहे दर्शनशास्त्र में कई एक स्थानों पर ब्रह्म को पुरुष/ईश्वर आदि शब्दों से भी कहा गया है। इसी को सत्, चिद् आनन्द अर्थात् सच्चिदानन्द-स्वरूप कहा गया है, ये तीनों इसके धर्म नहीं, अपितु वह सत् (नित्य), चित्त् =चैतन्य तथा आनन्द स्वरूप ही है।

2. प्रकृति-

प्रकृति को माया भी कहा जाता है,वह केवल सत् स्वरूप (नित्य) है। उसमें चैतन्य तथा आनन्द नहीं है।

इनको इस प्रकार दिखाया जा सकता है

ब्रह्म(ईश्वर)	प्रकृति (माया)	जीव(जीवात्मा)
↑	↑	↑
सत् नित्य चित्	सत्(नित्य)	सत्(नित्य)चित्

3. जीव-

जीव तीनों कालों में रहने के कारण नित्य तथा ईश्वर का अंश होने से चिद्रूप है अर्थात् वह नित्य भी है और चेतन भी है। किन्तु उसमें आनन्द नामक नहीं। यहीं ईश्वर और जीव में भेद हैं।

4. माया(प्रकृति)-

माया अथवा प्रकृति से तात्पर्य भौतिक जगत् के मूलकारण से है। सत्त्व रजस् और तमस् तीन गुणों की साम्यावस्था प्रकृति है। यह जगत्- पहले भी था, आज भी है और भविष्य में भी रहेगा। जैसे वृक्ष पहले भी था, आज भी है, भविष्य में भी रहेगा। पहले वह (वृक्ष) अपने बीज में विद्यमान था ।बीज से बदल कर वृक्ष के रूप में आया है। पुन: वही वृक्ष अपने बीज में निहित हो जाएगा। संसार के प्रत्येक प्राकृतिक तत्त्वों की यही स्थिति मानी गई है। इसी बात को भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैंकि-

हे अर्जुन! ये सभी प्राणी पहले अव्यक्त रूप से अपने-अपने कारणों में विद्यमाान थे, आज वे व्यक्त रूप से तेरे सामने हैं और भविष्य में पुन: अपने-अपने कारणों में लीन हो जायेगें(अव्यव्यादीनि भूतानि

www.thearyasamaj.org

व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यत्तनिधनान्येव। तात्पर्य है कि किसी भी वस्तु की व्यक्त अवस्था कार्य है और अव्यक्तै अवस्था कारण। जैसे व्यक्त अवस्था घड़ा है और उस घड़े की अव्यक्त अवस्था मिट्टी है। घड़ा मिट्टी में पहले भी अव्यक्त रूप से था आज भी मिट्टीमय है, भविष्य में घड़े के टूटने पर मिट्टी शेष रहेगी, टूटते टूटते उस मिट्टी के परमाणु शेष रहेगें। ऐसी स्थिति में प्रकृति के सभी पदार्थ नित्य हैं, पर चेतनता तथा आनन्द से रहित हैं।

ब्रह्म (ईश्वर)-

ब्रह्म (ईश्वर)-नित्य है, चित्=चेतन है साथ ही आनन्दमय भी है। सम्पूर्ण सृष्टि का कारण होने से प्रकृति के कण कण में व्याप्त है। संसार का उत्पादक पालक तथा विनाशक होने से सर्वशक्तिमान् तथा आनन्द स्वरूप है- तीनों तत्त्वों में ईश्वर ही आनन्द मय है। जीव चित् तथा नित्य तो है, पर उसमें आनन्द का अभाव है। आनन्द न होने के कारण वह आनन्द की प्राप्ति के लिए दौड़ता है और वह उस आनन्द को प्रकृति के पदार्थों में देखता है अर्थात् लौकिक वस्तुओ में वह आनन्द की प्राप्ति के लिए दौड़ता है। किन्तु उन में वह जिस आनन्द का अनुभव करता है, वह वास्तविक आनन्द नहीं हैं। आनन्द तो ब्रह्म (ईश्वर) का धर्म है। प्रकृति में आनन्द कीभ्रांति मात्र है। वास्तविक आनन्द तो प्राकृत वस्तुओं में है ही नही। वह तो ईश्वर का ही धर्म है। बस, यहीं जीव मार खा जाता है। वह वास्तविक आनन्द स्वरूप जो ब्रह्म (ईश्वर) है उसकी ओर न जाकर मायामय (प्राकृतिक जगत्) में आनन्द को ढूँढता है। मायाजन्य आनन्द वास्तविक आनन्द नहीं। अगर जीव माया की ओर न बढ़कर ईश्वर की ओर बढ़ जाय तो, उसको वास्तविक आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। इसी बात को सामने रखकर कबीर जीव के प्रतीक रूप नलिनी को कहते हैं कि-हे नलिनी (हे जीव) तेरा प्रेम जो वास्तविक आनन्द स्वरूप ब्रह्म अर्थात् ईश्वर है, उससे न होकर आनन्द रहित जो माया अर्थात् प्राकृतिक पदार्थ हैं उससे हो गया। इसलिए तू संसार में कष्टों को भोग रही है। अर्थात् जीव माया में लिप्त होने से दुःख भोगता है। यदि वह ब्रह्म अर्थात् ईश्वर की ओर मुड़ जाय तो वहाँ आनन्द प्राप्त कर लेगा, पर वह तो माया से मोहित गया। अत: नाना प्रकार के कष्टों को भोग रहा हैं।

इसको ऐसा समझा जा सकता है-

१) ब्रह्म
सत् (नित्य) चित्
आनन्द

माया रहित
लौकिक आनन्द से युक्त

जीव (सांसारिक दशा में)

यहां स्पष्ट देखा जा रहा है कि जीव इस जगत में प्राकृतिक पदार्थों में ही आनन्द समझता हुआ उसी की ओर झुका हुआ है। जब कि उसमें नित्य आनन्द नहीं है। अत: दु:खी है। यदि जीव- माया की ओर न बढ़कर ईश्वर की

www.thearyasamaj.org

ओर बढ़ जाय तब कोई बाधा नहीं क्यों ईश्वर तो आनन्दमय ही है, वह स्थिति इस प्रकार होगी।

२) अलौकिक आनन्दमय

ब्रह्म (ईश्वर) ← माया (प्रकृति)
जीव

इसमें देखें कि यदि जीव अपना लगाव माया से हटाकर ईश्वर की ओर कर देता है, ऐसी दशा में आनन्दमय होगा। इसी के लिए कबीर कहते हैं-

कहे कबीर जो उदकि समाना
ते नहिं मुये हमारे जाना।।

कबीर कहते हैं कि-जो उदकि= जल के समान हो गए, हमारे मत में वे मरते नहीं। अर्थात् (ब्रह्म) के समान होने पर जीव ब्रह्ममय अर्थात् नित्य शुद्ध बुद्ध आनन्दमय हो जाता है और जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाता है।

कबीर ने सर्वत्र अपनी पदावली तथा साखियों में ब्रह्म को जल रूप में लिया है। जैसे **जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है।**
****
जल ही से था हिम भया हिम हि गया विलाय।

वेदान्त के अनुसार जब तक माया है तभी तक द्वैत अर्थात् तू और मैं है। माया के हटने पर किसी प्रकार का भेद नहीं रहता। इसी लिए कबीरदास कहते हैं-

कबीरा जो था सोई भया, अब कुछ कहा न जाय।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में स्थान-स्थान पर अर्जुन को समझाते हुए कहा कि अर्जुन! जो मुझे सभी प्राणियों में देखता है, और सम्पूर्ण प्राणियों को मुझमें देखता है, वह एक प्रकार से मेरा ही स्वरूप होकर अमृत हो जाता है। इस बात को समझने के लिए अर्जुन जैसे भक्त को भी भगवान् से कई एक प्रश्न करने पड़े। पर कबीर इसी बात को एक साधारण सी आँखों देखी तथा घ्राण से सूँघी हुई बात के द्वारा समझाते हुए कहते हैं -

" तेरा साईं तुझ में ज्यूँ पुहूपन मे वास "

तुम्हारा स्वामी वह परमपिता परमात्मा तुम्हारे में ऐसे ही विद्यमान है, जैसे फूल में सुगन्ध।

बस एक फूल तोड़ लो और सूंघ लो, कबीर की परमात्मा विषयक बात एकदम समझ में आ जायेगी। फूल है, सुगंध है, पर फूल में सुगन्ध दिखाई नहीं दे रही है। अगर कोई चाहे कि मैं सुगन्ध को फूल से अलग करदूँ यह संभव नही, और फूल सुगन्ध के बिना रह ले ऐसा भी संभव नहीं। दोनों भिन्न होने पर भी एक हैं और एक होने पर भी भिन्न हैं। इन्द्रिय से अनुभव होने के कारण अलग भी हैं। बस यही आत्मा और परमात्मा का रहस्य है। इतना ही नहीं कबीर एक सुन्दर युक्ति द्वारा जीव और ब्रह्म की एकता की अवस्था के विषय में समझाते हैं कि माया- उपहित होने पर जीव अपने को ईश्वर से पृथक् समझता है किन्तु माया रहित होने पर दोनों में कोई भेद नहीं, भेद तभी तक है जब तक जीव और ब्रह्म अर्थात् ईश्वर में माया के कारण पृथक्ता है

www.thearyasamaj.org

इसी को सरलता से दिखाते हुए कबीर कहते हैं कि -

लाली मेरे लाल की, जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गई लाला।।

कहीं चौराहे पर एक बिजली के खम्भे पर लाल बत्ती लगी हुई है, समझलो लाल रंग का बल्ब लगा हुआ है। कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को समझा रहा है कि देखो सामने वह लाल बत्ती है। क्योंकि वह अभी उस लाल वत्ती से दूर है, पर जब वह स्वयं उस लाल बल्ब के नीचे जाकर खड़ा होगा तो तब वह भी स्वयं को लाल ही पायेगा। अब उसके ऊपर पड़ने वाली लालिमा और दूर से दिखाई देने वाली बल्ब की लालिमा में भेद नहीं वह स्वयं भी लालिमा युक्त हो गया है। इसी प्रकार जीव जब तक माया से उपहित है तभी तक सत्-चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म से पृथक् है तभी तक उन दोनों में अन्तर भी दिखाई देता है। किन्तु ब्रह्म का सान्निध्य होने पर जीव भी तदनुरूप हो जाता है और 'सोऽहम्' जो वह है वही मैं हूँ उसको ऐसा भाव हो जाता है।

वह ब्रह्म कैसा है। उस की वह ललिमा अर्थात् तेज और चैतन्य कैसा है। उसमें विद्यमान आनन्द क्या है, वह सगुण (सत्व, रजस्, तमस् युक्त) है अथवा निर्गुण। इस विषय में अनेकों ग्रन्थ अनेक प्रकार से लिखे गये जो कि अनेक प्रकार से उसकी व्याख्या करते हैं, पर कबीर केवल आंखों देखी बात जानता के सामने रखते हुए कहते हैं कि-

पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहवे को शोभा नहीं, देख्या ही परमान।।

कबीरदास कहते हैं कि उस परम शक्तिमान् परमात्मा को बतावें तो बतावें कैसे? क्योंकि उस जैसा कोई दूसरा है नहीं, जिससे उसकी उपमा दी जाय। बस जिन्होंने उसका साक्षात्कार किया वही उसको जान सकते हैं, पर वे कुछ बोलते नहीं। उपनिषद् भी यही कहती है कि जो कहता है कि मैं उसको ब्रह्म नहीं जानता वस्तुत: वही उसको जानता है। जो जानने का दम्भ भरता है वह उसके विषय में कुछ नहीं जानता। (नाऽहं वेदेति वेदेति) जिसने भक्ति- पूर्वक उससे प्रेम किया, वही उस आनन्द का अनुभव भी कर सकता है, जिसने ऐसा नहीं किया वह तो दुनियाँ में जैसा खाली हाथ आया उसी प्रकार खाली हाथ चला गया। कबीर इसी ओर सीधे-सादे शब्दों में कहते हैं -

सूने घर का पाहुणां, ज्यूँ आया त्यूं जाय।।

यह सभी जानते हैं कि यदि कोई अतिथि ऐसे घर में चला जाय जो घर खाली है, निश्चय ही उसको वहाँ से खाली हाथ ही लौटना पड़ेगा, यही बात ईश्वर पर भी क्यों न घटित हो। जब दिल में परमात्मा के लिए स्थान ही नहीं, उसके लिए हृदय रूपी किबाड़ ही नहीं खुले तो वह बेचारा ईश्वर आयेगा कहाँ।

www.thearyasamaj.org

मन–

अब मन को लीजिए, इसके बिषय में कबीर क्या कहते हैं। सभी कहते है कि मन ही सारे दु:खों का कारण हैं। बन्ध और मोक्ष का कारण भी मन को ही माना गया। इस मन को वश में करने के विषय में भी सारे वेद, उपनिषत्, पुराण, साहित्य, गीता आदि ग्रन्थ न जाने क्या-क्या उपाय बताते हैं। पर कबीर कहते हैं कि- अरे भाई मन के वश में होकर मत चलो उसको स्वतन्त्र मत छोड़ो, मन ही सारे झंझट की जड़ है। मन ही जीव के बन्धन तथा मोक्ष का कारण है, यदि मन वश में हो जाय तो इन्द्रियों की क्या ताकत जो इधर-उधर विषयों में भटकती रहें। अत: कबीर मन को अपने अधीन करने की बात करतें हैं। साथ ही उसको अधीन करने का सरल तरीका भी बता रहे हैं कि-

मन के मतै न चालिए, छाड़ि जीव की वांणि।
ताकू केरे सूत ज्यूँ, उलटि अपूठा आणि।।

कबीर जुलाह थे, इसलिए उन्होंने जो अपने बाल्य काल से देखा उसी के आधार पर मन को वश में करने का तरीखा बताते हैं कि-

मन जो दूर तक भाग रहा है। उसको भागने दो, जब वह काफी दूर चला जाए तब उसको उलट कर अर्थात् विषयों से उसको हटाकर परमात्मा या आत्मा में ऐसा ही लगा दो जैसा सूत कातने वाला जुलाहा या कोई व्यक्ति सूत को पहले लम्बा खींचकर ले जाता है और पुन: उसी को वापिस चरखे के ताकू पर लपेट देता है। क्योंकि मन तो जायेगा उसका स्वभाव ही चंचल है, चंचल वस्तु कभी भी स्थिर नहीं रह सकती, इसलिए कबीरदास कहते हैं, वह जहाँ तक जाता है जाने दो पर उसकी लगाम अपने हाथ में रखो और दूर तक गए उसको पुन: वापिस लाकर अन्दर की ओर ऐसे ही मोड़ दो जैसे कातने वाले के द्वारा सूत को वापिस लाकर ताकू पर लपेट दिया जाता है। जब वह परमात्मा रूपी ताकू पर लपेट लिया जायेगा तब कहीं नहीं जायेगा। इस प्रकार कबीर की वाणी को पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने सामाजिक ताने वाने को सरल तथा साधारण जनता को साधारण ढंग से समझाने के लिए सभी विषयों को अपने अनुभवों की एक विशेष पद्धति से अभिव्यक्त किया। उन्होंने अपने अनुभवों को प्रकट करने के लिए जो विधि अपनाई इतिहास-कारों या विद्वानों के द्वारा उसको ही कबीर का रहस्यवाद कहा गया। कबीर ने लौकिक वस्तुओं को प्रतीक मानकर उस अलौकिक तत्त्व को बताते हुए अपने विचार अभिव्यक्त किए। कबीर के ऐसे अनेक पद हैं, जो परमपिता परमात्मा के रहस्य को तथा संसार की वास्तविकता को जनता के सामने समझाने की चेष्टा करते हैं। लेख के विस्तारमय से सभी का स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता।

- संचालक वी.वी.आर.आई., साधु आश्रम, होशियारपुर।

www.thearyasamaj.org

बुद्धचरितम् महाकाव्य का साहित्यिक अनुशीलन

– सुश्री प्रियंका विजय

संस्कृत-साहित्य भारतीय-संस्कृति का वादन होने से प्रत्येक भारतीय के लिए आकलनीय है। इसी साहित्य में काव्य का विषय भी बहुत व्यापक है। खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, चम्पूकाव्य, ऐतिहासिक काव्य, कथाकाव्य, सुभाषित काव्य, गद्यकाव्य, नाटक आदि काव्य के ही पक्ष हैं। इनमें चरितकाव्य की भी परम्परा रही है, जिसमें पुष्पदन्तकृत नागकुमारचरित, यशोधरचरित, विक्रमकृत नेमिचरित, आचार्य शुभचंद्रकृत, चन्द्रप्रभचरित, पद्मनाभचरित, जीवनधरचरित, पद्मगुप्तकृत नवसाहसांकचरित, मखंककृत श्रीकंठचरित आदि प्रमुख हैं।

इसी चरितकाव्य परम्परा में बुद्धचरितम् का स्थान भी प्रमुख है।[1] बुद्ध के चरित को आधार बनाकर यह महाकाव्य रचा गया है। बुद्धचरित महाकाव्य अश्वघोष द्वारा प्रणीत है।

महाकाव्य के लक्षण के अनुसार बुद्धचरित महाकाव्य है। यह महाकाव्य २८ सर्गों में निबद्ध है। प्रथम सर्ग में बुद्धजन्म, द्वितीय सर्ग में अन्त:पुरविहार, तृतीय सर्ग में संवेगोत्पत्ति, चतुर्थ सर्ग में स्त्री निवारण, पंचम सर्ग में अभिनिष्क्रमण के वृत्तान्त, षष्ठ एवं सप्तम सर्गों में छन्दक विसर्जन एवं तपोवन प्रवेश, अष्टम सर्ग में बुद्ध वियुक्त अन्त:पुर का करुण क्रन्दन, नवम सर्ग में कुमार सिद्धार्थ के अन्वेषण का आयाम, दशम सर्ग में गौतम के मगध जाने एवं बिम्बसारागमन का उल्लेख, एकादश सर्ग में कामनिन्दा, द्वादश सर्ग में बुद्ध का शान्ति प्राप्त्यर्थ महर्षि अराड-समीप अभिगमन, त्रयोदश सर्ग में तथागत का मार विजय, चतुर्दश सर्ग में सिद्धार्थ की बुद्धत्वप्राप्ति, पंचदश में धर्मचक्र प्रवर्तन, षोडश-सप्तदश सर्गों में बुद्ध के अनेक शिष्यों एवं महाशिष्यों का वर्णन तथा उनकी प्रवज्या का उल्लेख, अष्टादश सर्ग में अनाथ पिण्डद की दीक्षा का वर्णन, ऊनविंशति में पिता एवं पुत्र का समागम, एकविंशति, द्वाविंशति, त्रयोविंशति सर्गों में जेतवन स्वीकार, प्रव्रज्यास्रोत, आयुष्यस्थिरीकरण, चतुर्विंशति

१. गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृं. सं. ८८८-९३८

www.thearyasamaj.org

में लिच्छवियों पर की गई अनुकम्पा, पंचविंशति सर्ग में बुद्ध का निर्वाण मार्ग की ओर उन्मुखीकरण एवं षड्विंशति में महापरिनिर्वाण, सप्तविंशति में निर्वाण की संस्तुति धातुविभाजन के विवेचन के साथ बुद्धचरित की समाप्ति हो जाती है।

पात्र-योजना - महाकाव्य के लक्षणानुसार बुद्धचरित महाकाव्य में पात्रयोजना उचित की गई है। बुद्धचरित में पात्रयोजना के अन्तर्गत पुरुषपात्र तथा स्त्रीपात्र को सम्मिलित किया गया है। **पुरुष पात्र में सिद्धार्थ, शुद्धोधन, छन्दक हैं।** जिनमें 'सिद्धार्थ' धीरप्रशान्त कोटि का नायक है। जगत्हित की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने यह किया- **बोधाय जातोस्मि जगद्धितार्थम्** तथा **धम्मस्य दुःखे जगते हिताय।** 'शुद्धोधन' कपिलवस्तु के वीर पराक्रमी राजा हैं, जिनका राज्य विस्तृत एवं सुदृढ़ है।[2] 'छन्दक' सिद्धार्थ का विश्वासी स्वामिभक्त सारथि है।[3] 'कन्थक' एक मूक जीव है किन्तु अपनी गतिविधियों जैसे- हिनहिनाहट, अश्रुपात एवं भूखा रहकर अपने दर्द को अभिव्यक्त करने की तकनीक।[4] **स्त्रीपात्र में-यशोधरा, गौतमी प्रमुख हैं।** 'यशोधरा' बुद्धचरित की नायिका सिद्धार्थ की पत्नी है।[5] 'गौतमी' राजकुमार सिद्धार्थ की विमाता थी, जिसने मायादेवी के दिवंगत हो जाने पर बुद्ध का पालन-पोषण किया था।[6]

वर्णन-वैचित्र्य - महाकाव्यों की परम्परानुसार इस महाकाव्य में वर्णन-सौन्दर्य के अन्तर्गत आने वाले सभी वर्णन तो यद्यपि उपलब्ध नहीं होते तथापि उनमें से कुछ वस्तुओं का वर्णन अल्पांश में ही मिलता है। यथा-

नगर वर्णन - कपिलवस्तु नगर में स्थित भवनों के वर्णन से वहाँ की धन-सम्पन्नता एवं नगर-सौन्दर्य को प्रदर्शित किया गया है। कपिलवस्तु के भवन ऊँचे-ऊँचे हैं एवं उन के वातायनों से नीचे झाँकती हुई स्त्रियाँ ऐसी शोभित हो रही हैं, मानो नीलकमल खिले हैं। सुन्दर स्त्रियों से युक्त यह नगर अप्सराओं से युक्त स्वर्ग-सा जान पड़ता है। इसकी सड़कें लम्बी-चौड़ी एवं स्वच्छ हैं। राजकर्मचारी राजमार्ग को सुन्दर ढंग से सजाते हैं। जब राजकुमार सिद्धार्थ यात्रा के लिए निकलते हैं तो राजमार्ग फूलमालाओं एवं पताकाओं द्वारा सजाया जाता है।[7]

---

२. बुद्धचरितम्-१/५२,५३,५५, २/१३, १५, ९/१,४,७
३. वही, २८/६२-६३, ६/७, ८, ३५, ६७, ८/३२-३५
४. वही, ६/३१
५. वही, २/२६
६. वही, ८/५२
७. वही, ३/९

www.thearyasamaj.org

आश्रम-सौन्दर्य- अश्वघोष ने आश्रम का वर्णन भी अत्यन्त सजीव ढंग से किया है। तपोवन में सिद्धार्थ के प्रवेश करते ही आश्रमवासियों की स्थिति का वर्णन सातवें सर्ग में किया गया है।[८]

युद्ध-वर्णन- बुद्धचरित में युद्ध का बड़ा ही ओजस्वी चित्रण महाकवि ने किया है। मार सिद्धार्थ की तपस्या भंग करने के उद्देश्य से उसे चेतावनी देता है।[९]

रस-योजना- बुद्धचरित में अंगीरस शान्तरस है। भरतमुनि ने ८ रसों को माना है[१०]। परन्तु मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने शांतरस को भी प्रधानता दी है। बुद्धचरित में शान्तरस की अनुभूति निम्न प्रकार से हुई है-

जगतश्च यदा ध्रुवो वियोगो ननु धर्माय वरं स्वयं वियोगः।
अवशं ननु विप्रयोजयेन्मामकृतस्वार्थमतृप्तमेव मृत्युः।।[११]

यहाँ शम का स्थायीभाव है- विश्व से वियोग का निश्चित होना एवं धर्माचरण के लिए स्वयं ही पृथक् हो जाना, आलम्बन-विभाव है - मृत्यु एवं आश्रम, सिद्धार्थ। मृत्यु के विषय में जानकर सिद्धार्थ के हृदय में स्थित निर्वेद स्थायीभाव उद्दीप्त हो जाता है। सिद्धार्थ का तटस्थ होना, चिन्तित होना आदि संचारीभाव अनायास ही रस रूप में परिणत हो जाता है। शान्त रस के साथ-साथ यहाँ करुण, वीर, श्रृंगारादि रसों का भी यथावसर वर्णन हुआ है।

अलंकार योजना- बुद्धचरित में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, एकावली, विशेषोक्ति, विभावना, संदेह, विषम, यमक, अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग हुआ है। बुद्धचरित में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग यत्र-तत्र किया है। यथा-

हंसेन हंसीमिव विप्रयुक्तां त्यक्तां गजेनेव वने करेणुम्।।
आर्तां सनाथामपि नाथहीनां त्रातुं वधुमर्हसि दर्शनेन।।[१२]

इस श्लोक में 'ह', 'क्त', 'स' आदि वर्णों की बारम्बार आवृत्ति होने के कारण अनुप्रासालंकार की प्रतीति होती है।

यमक अलंकार-

भीष्मेण गङ्गोदरसंभवेन,
रामेण रामेण च भार्गवेण।
श्रुत्वा कृतं कर्म पितुः प्रियार्थं,
पितुस्त्वमप्यर्हसि कर्तुमिष्टम्।।[१३]

यहाँ एक राम पद से दशरथ पुत्र तथा दूसरे राम पद से परशुराम अर्थ अभीष्ट है। अतः 'रामेण' शब्द की भिन्न-भिन्न अर्थों में आवृत्ति

८. बुद्धचरितम्- ७/४
९. वही, १३/१३
१०. नाट्यशास्त्र-६/१६
११. बुद्धचरितम् - ५/३८
१२. बुद्धचरितम्-९/२७
१३. वही, ९/२५

www.thearyasamaj.org

होने के कारण यमक अलंकार है।

छन्दःयोजना - बुद्धचरित में उपजाति, अनुष्टुप्, वंशस्थ, रुचिरा, प्रहर्षिणी, मालिनी, शिखरिणी, पुष्पिताग्रा, वसन्ततिलका इत्यादि छन्दों का प्रयोग मिलता है।

अनुष्टुप् का उदाहरण द्रष्टव्य है -

मुञ्च कन्थक मा वाष्पं दर्शितेयं सदश्वता ।
मृष्यतां सफलः शीर्घं श्रमस्तेऽयं भविष्यति ।।[१४]

यहाँ प्रत्येक चरण में आठ अक्षर हैं। जिनमें पाँचवा अक्षर लघु तथा छटा अक्षर गुरु है। पहले और तीसरे चरण में सातवाँ अक्षर गुरु है, दूसरे और चौथे चरण में सातवाँ अक्षर लघु।

भाषा शैली - बुद्धचरित मुख्य रूप से वैदर्भी रीति में उपनिबद्ध है। कवि ने युद्धवर्णन, सेना-वर्णन आदि जटिल समस्याओं के प्रसंग में समासयुक्त शैली का प्रयोग किया है।[१५]

इन्होंने लोक-कल्याण के निमित्त सूक्ति-शैली का भी प्रयोग किया है-

सुखं हि धर्मस्य वदन्ति मूलम्[१६]

उपसंहार - महाकवि अश्वघोष की कृति 'बुद्धचरित' एक ऐसा ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसमें शाक्यकुलीन राजकुमार 'सिद्धार्थ' की सम्पूर्ण जीवनचर्या का चित्रण हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रणयन में कवि का मुख्य उद्देश्य तथागत के अमरसंदेश को जन-जन तक संप्रेषित करना है, न कि अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करना। इस महाकाव्य के अध्ययन से तत्कालीन परिस्थितियों-राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक जीवन की यथावत् जानकारी प्राप्त होती है। अतः काव्यशास्त्रियों द्वारा निर्धारित मापदण्ड पर यह पूर्णरूपेण महाकाव्य सिद्ध होता है।

-शोधच्छात्रा (संस्कृत), वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

---

१४. बुद्धचरितम्- ६/५५
१५. वही, १९/१७
१६. वही, ७/१८

www.thearyasamaj.org

आयुर्वेदीय दृष्टि में रोगों के कारण

– श्री तरसेम कुमार शर्मा

भारतीय दर्शन विशेषकर सांख्यदर्शन सत्त्व, रजस्, तमस् गुणों की विषमावस्था को जगत् का मूल-कारण मानता है। आयुर्वेद वात, पित्त और कफ इन तीनों को शरीर का मूलकारण मानता है। शरीर में होने वाले भौतिक और रासायनिक परिवर्तनों अर्थात् ''मेटावोलिज्म'' का कारण इन्हीं तीन को कहता है। मूल में आयुर्वेद इन्हें अप्रत्यक्ष मानता है, यद्यपि इनके प्राकृतिक और वैकृतिक परिणामों को जो प्रत्यक्ष हैं, उन्हें वात, पित्त, कफ इन नामों से पुकारता है। स्वास्थ्य का कारण होने से इन्हें 'धातु' कहता है और रोगों का कारण होने से इन्हें ''दोष'' कहता है। **वायुतत्त्व** जो शरीर की ऐच्छिक अनैच्छिक चेष्टाओं का कारण है ''√वा गतौ'' धातु से वायु कहा गया है। चरक ने कहा है ''**सर्वा हि चेष्टा वातेन**''। इस तत्त्व को आयु का प्रत्यायक कहा है- '**वायुरायुः**' तथा **आयुषोऽनुवृतिप्रत्ययभूतो वायुः**। शरीररूपी यन्त्र की संचालक शक्ति वायु है।

प्राणवायु - मस्तिष्कान्तर्गत वायुतत्त्व इन्द्रियों द्वारा रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द आदि को ग्रहण करता है, तथा चिन्तन, मनन, ऊहापोह, निर्धारण, आहारपान, श्वास, प्रश्वास आदि लेने का कार्य करता है।

उदानवायु- फुफ्फुस तथा कण्ठ की उस वायु को कहते हैं जो उच्चारण के समय मुख द्वारा काम करता है।

समानवायु- पाचनस्थान में विद्यमान वायु, पाचक रसों को प्रवृत्त करने का काम करता है

अपानवायु- वस्तिस्थान में स्थित वायु मलमूत्र को विसर्जित आदि का काम करता है।

व्यानवायु- अनैच्छिक नाड़ी-मण्डल के केन्द्रस्थान मस्तिष्कगत में विद्यमान वायु, जो रक्त-लसीका के संचार का तथा मांसपेशियों की होने वाली ऐच्छिक-अनैच्छिक चेष्टाओं को उत्पन्न करने का कार्य करता है।

वायुरोग- यदि शरीर को पोषक आहार न मिले, किसी रोग के कारण शरीर निर्बल हो जाए, शरीर या मन पर कोई भारी आघात आ पड़े या क्रोध, कलह, भय, शोक, चिन्ता आदि से मानसिक भाव ग्रस्त हो जायें या किसी विष

www.thearyasamaj.org

द्रव्य से-तम्बाकू, मद्य, केफीन, भांग आदि का चिरकाल तक सेवन या शरीर में मधुमेह, यूरिक एसिड, यूरिया आदि या किसी रोगजीवाणु का विष चिरकाल तक बना रहे, तो शरीर का प्राणतत्त्व निर्बल हो जाता है। शरीर और मन की क्षमता, सामर्थ्य कम हो जाते हैं।

पित्तरोग- शरीर का कोई अवयव क्षत हो जाता है तो उस क्षत-प्रदेश के पाचन (Liquefaction) के लिये स्वभावतः देहाग्नि प्रबल होती है। शरीर के अवयवों में क्षत सबसे अधिक जीवाणुओं या (Viruses) के कारण होता है। ऐसी अवस्था में शरीर में पित्तवृद्धि होती है तब ज्वर, दाह, पिपासा, स्वेद, रक्तक्षय आदि लक्षण हो जाते हैं जिन्हें पित्तवृद्धि का लक्षण कहते हैं। यह पित्तवृद्धि जीवाणुओं के विनाशार्थ उनके Antibodies को उत्पन्न करने के लिये होती है रोग के कारणभूत जीवाणु जब नष्ट हो जाते हैं तब पित्तवृद्धि शान्त हो जाती है।

कफतत्त्व - शरीर का तीसरा मूलतत्त्व कफतत्त्व है। इसके कारण शरीर के अवयवों में वृद्धि रोहण, रोपण, रक्षण आदि कर्म होते हैं। शरीर में किसी क्षत के होते ही तुरन्त उसका रोहण आरम्भ हो जाता है। यदि अवयव में जीवाणु आक्रमण करता है तो वहां रक्षण-कर्म आरम्भ हो जाता है। इस तत्त्व के कारण शरीर और मस्तिष्क में उचित विकास होता है। शरीर परिपुष्ट होता है। मस्तिष्क में बुद्धि का विकास होता है। मन में उत्साह का उदय होता है। ज्ञान-शक्ति, सहन-शक्ति और धीरता के गुण उत्पन्न होते हैं। प्रकृति भी आयुर्वेद में तीन प्रकार की कही है जिसमें जन्म से ही प्राणतत्त्व या जीवनीयतत्त्व की निर्बलता है उसे वातिक प्रकृति का कहा गया है। जिसमें जन्म से अग्नितत्त्व की प्रबलता है उसे पित्तप्रकृति का कहा है। जिसमें जन्म से अग्नितत्त्व की निर्बलता है उसे श्लैष्मिक प्रकृति का कहा है। उस-उस प्रकृति वाले में उस-उस दोषों के रोग होने की प्रवृत्ति रहती है।

-शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

www.thearyasamaj.org

भारतीय संस्कृति और संगीत

– डॉ० दिनेश कुमार

''समस्त जगत् में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गई हैं, उनसे अपने-आप को परिचित करना या कराना संस्कृति है।'' दूसरी परिभाषा में संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृष्टिकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है। यह मन, आचार अथवा रुचियों की परिष्कृति अथवा शुद्धि है। यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है।

इस अर्थ में संस्कृति कुछ ऐसी चीज़ का नाम है जो बुनियादी और अन्ताराष्ट्रीय है, फिर, संस्कृति के कुछ राष्ट्रीय पहलु भी होते हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनेक राष्ट्रों ने अपना कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व तथा अपने भीतर कुछ खास ढंग से मौलिक गुण विकसित कर लिए हैं। यही संस्कृति है। किसी भी राज्य की अपनी भाषा, सभ्यता, रहन-सहन, खान-पान, पहनावा, क्षेत्रीय बोलियां, कार्यक्षेत्र, कार्य, धर्म, धार्मिक स्थल, संगीत आदि कलाएं, कृषिशैली, पशुपालन, शिक्षणशैली आदि होता है, यही संस्कृति के परिचायक माने जाते हैं। भारतीय संस्कृति में भी यह सभी तत्व विद्यमान हैं जिनका लोहा सम्पूर्ण विश्व मानता है।

स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री ''पं० जवाहरलाल नेहरू'' ने अपने ग्रन्थ ''दी डिस्कवरी आफ इंडिया'' में लिखा है कि भारतीय कला, धर्म और दर्शन के साथ इतनी घनिष्ट भाव से जुड़ी हुई है कि उसका पूर्व-प्रबोधन तब तक कठिन है जब तक कि हमें उनके आदर्शों का ज्ञान न हो, जो भारतीय चिन्तन को प्रेरित करते रहे हैं। भारतीय कला तथा संगीत में एक ऐसी विशेषता है जो पूर्व और पश्चिम के सिद्धान्तों को अलग करती है। भारतीय संस्कृति-सम्बन्ध परिषद् में अपने-भाषण (९ अप्रैल १९५०) को पं. जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि 'संस्कृति का अर्थ, मानव का आंतरिक विकास है। मैं निःसन्देह कह सकता हूँ कि आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों का अधिक महत्त्व है, ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि की माने तो (संगीत) में (गीत, वाद्य और नृत्य) तीनों कलाओं का यथार्थ रूप से मिश्रण है। गीत, वाद्य और नृत्य यह तीनों एक दूसरे के पूरक हैं। इन तीनों में से एक के बिना संगीत अधूरा है और संगीत के बिना भारतीय संस्कृति अपंग है।

आध्यात्मिक दृष्टि से संगीत मोक्ष का साधन समझा जाता है। इसी कड़ी में संसार के मायाजाल को विच्छिन्न कर 'सोहं' तत्त्व में अथवा ''राम'' तत्व में पहुंचने का सोपान है 'राग'। राग केवल गति या रंजन ही नहीं,

www.thearyasamaj.org

इसका ध्यान संगीत के आध्यात्मिक पक्ष की ओर भी संकेत करता है जो 'ईश्वर' भक्ति का साधन है।

आदिम युग में संगीत मनुष्य के अन्तर में था। मनुष्य संगीत को मनोरंजन और मोक्ष प्राप्ति का साधन अथवा आधार मानता था। यह उसकी भावना से सम्मिलित होने के साथ-साथ सर्वशक्तिमान् की आराधना का साधन था। आज भारतीय संगीत भारतीय संस्कृति और सभ्यता का उपादान है। 'वात्स्यायन' के अनुसार ६४ कलाओं में संगीत सर्वश्रेष्ठ कला है तथा तीनों कलाओं गीत, वाद्य और नृत्य में, गीत अर्थात् गाना संगीत में भी सर्वश्रेष्ठ है। संगीत के क्रमिक विकास का रूप हमें हड़प्पा संस्कृति से उपलब्ध होता है जिसमें सरल, सहज,प्रार्थना-आवेदन में ही संगीत रूपायित था और स्तोभ, गान, उद्गान गाथा ही संगीत के रूप थे।

वैदिक युग में यज्ञ के समय आहुति देने के साथ ही विविध वाद्यों के साथ गान होता था। माना जाता है कि वैदिक युग में संगीत के सातों स्वर विकसित हो चुके थे। यथा- आर्चिक (एक स्वर), गाथिक (दो स्वर), सामिक (तीन स्वर), स्वरान्तर (चार स्वर), औड़व (पांच स्वर), पाड़ब (छ: स्वर) और सम्पूर्ण (सात स्वर)। इस युग में संगीत का पूर्ण विकास था। यद्यपि उस समय संगीत के स्थान पर गान, उपगान, उद्गीति, स्तोत्र जैसे शब्दों का प्रयोग होता था। वेदों में सामवेद को संगीत का मूल स्रोत माना जाता है। उसमें संगीत के कई तथ्य मिलते हैं। परन्तु हम इस तथ्य को नहीं नकार सकते कि संगीत प्रकृति की देन है और हम प्रकृति के ऋणी अथवा धन्यवादी हैं।

आरम्भ में तीन स्वरों का प्रचलन था। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित, इन्हें स्थान-स्वर कहा गया है। बाद में इन्हें मन्द्र, मध्य और तार की संज्ञा दी गई। इस प्रकार सात स्वरों की उत्पत्ति हुई। यथा- उदात्त से गंधार (ग) और निषाद (नि), अनुदात्त से ऋषभ (रे), एवं धैवत (ध), तथा स्वरित से (स) षड्ज, मध्यम (म) व पंचम (प)। पं. शार्गदेव व पं. पार्श्वदेव आदि ने शब्द या सूक्ष्म शब्द आदि को संगीत सृष्टि का प्रतिकारक माना है। प्राणवायु और इच्छाशक्ति के मिलन से सूक्ष्म-स्वर या नाद की उत्पत्ति होती है जो संगीत का रूप बन कर सामने आती है। नाद के दो रूप हैं- आहत और अनाहत नाद। संगीत आहत नाद पर आधारित है। अनाहत नाद जो योगियों द्वारा ध्यान मन-मस्तिष्क में सुना जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति में संगीत का अभिन्न स्थान है और संस्कृति को संजोए रखने में संगीत मुख्य भूमिका निभाता है। हम और हमारी संस्कृति इसके बिना अधूरी है।

-शोधार्थी, यू०टी०आर०सी० सपरून सोलन-173211 (हि.प्र.)
मो: 09817185485, 09857545537

www.thearyasamaj.org

संस्थान-समाचार

दान –

मैं० वर्धमान टैक्सटाईल लि० (यूनिट-I) फगवाड़ा रोड़, होशियारपुर।	३,००,०००/-
श्रीमती सरोज भल्ला १३, फ्रैंडस कालोनी, सरूप नगर, कानपुर (यू.पी.)	२१००/-
श्रीमती सर्वजीत १६९, शालीमार नगर, होशियारपुर।	५००/-
श्रीमती मनदीप अरोड़ा १३७, फेज-३, अर्वन इस्टेट, निकट वी.वी.एम.स्कूल, डुगरी, लुधियाना।	५००/-
श्री एम. पी. वीर, १८ सी, विजय नगर, दिल्ली-११०००९	१०००/-
श्रीमती सन्तोष शर्मा, पत्नी डॉ० वेदप्रकाश शर्मा, १४०, हवाईयां, डा मनकोटा, यू.एस.ए.	५०००/-
श्री उपेन्द्र सेठी द्वारा आर.के.गांधी मकान नं. १७०३, सैक्टर-४, पंचकूला।	५०००/-

---

हवन-यज्ञ–

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। नवम्बर 2016 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ भी किया गया।

बधाई-

प्रो० आदित्य आंगिरस द्वारा विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्कृत एवं भारत-भारती अनुशीलन संस्थान(पंजाब विश्वविद्यालय) साधु आश्रम, होशियारपुर के चेयरमैन के पद पर प्रतिष्ठित होने पर सभी की ओर से बहुत-बहुत बधाई।

www.thearyasamaj.org

विविध-समाचार

।। ओ३म्।।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्यसमाज, सैक्टर २२-ए, चण्डीगढ़

आर्यसमाज सैक्टर २२-ए चण्डीगढ़ में विगत ०५-०९-२०१६ सोमवार से ११-०९-२०१६ रविवार तक सामवेद पारायण महायज्ञ का आयोजन डॉ० सोमदेव शास्त्री जी मुम्बई के ब्रह्मत्व में हुआ। यह महायज्ञ एक सप्ताह तक प्रातः-सायं गुरुकुल पोंधा के ब्रह्मचारियों के सुमधुर वेदपाठ द्वारा बहुत उत्तम रीति से डॉ० सोमदेव शास्त्री मुम्बई के ब्रह्मत्व में सफलतापूर्वक सम्पन्न कराया गया, जिसकी पूर्णाहुति ११-०९-२०१६ दिन रविवार को अनेकों यज्ञमानों के शुभ संकल्पों के साथ सम्पन्न हुई।

तत्पश्चात् अगले सत्र में आर्ष शिक्षा संस्कृति रक्षा सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसके अध्यक्ष पूज्य स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी रहे तथा अन्य गणमान्य विद्वान् जन जैसे डॉ० शिवकुमार शास्त्री वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर हरिद्वार, श्री शैलेन्द्र वर्मा जी चण्डीगढ़, डॉ० आनन्द कुमार आर.पी.एस., डॉ० विक्रम कुमार विवेकी चण्डीगढ़, श्री कुलदीप खण्डूजा उद्योगपति चण्डीगढ़, श्री रवीन्द्र तलवाड़ प्रधान केन्द्रीय आर्य सभा चण्डीगढ़, श्री धर्मवीर बत्रा प्रधान सैक्टर-९ पंचकूला, श्री नरेन्द्र आहुजा विवेक पंचकूला, श्री अशोक पाल जग्गा एडवोकेट चण्डीगढ़, श्री पं. भानुप्रकाश आर्य बरेली (उ.प्र.) इत्यादि महानुभावों ने आर्ष शिक्षा संस्कृति रक्षा के सम्बन्ध में विशेष सुझाव बड़े तर्कपूर्ण रखे। वेद, आर्ष शिक्षा संस्कृति की रक्षा हेतु आर्यसमाज सैक्टर-२२ ए चण्डीगढ़ में वेदप्रचार सप्ताह समापन से एक दिन पूर्व बाहर से पधारे तथा स्थानीय विद्वानों और अन्तरंग सदस्यों व सभासदों की एक विशेष बैठक हुई जिसमें अन्तरंग सभा द्वारा स्वीकृत आर्ष गुरुकुल खोलने के संदर्भ में योजनाबद्ध व उसके स्वरूप पर चर्चा करते हुए शीघ्र आर्ष गुरुकुल खोलने का निर्णय हुआ।

इस समारोह में आर्ष गुरुकुल की स्थापना की घोषणा की गई जिसका सभी आर्य महानुभावों ने मुक्तकण्ठ से समर्थन किया। मंच का संचालन श्री सोमदत्त शास्त्री प्रधान आर्यसमाज सैक्टर-२२-ए, चण्डीगढ़ ने बड़ी कुशलता से किया। समाज के सभी सदस्यगण भी बहुत सक्रिय रहे।

www.thearyasamaj.org

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के १०४वें वार्षिकोत्सव का आयोजन

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के १०४वें वार्षिकोत्सव पर भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अमितशाह जी ने गुरुकुल कुरुक्षेत्र के इतिहास और उपलब्धियों की प्रशंसा करते हुए आर्यसमाज तथा डी.ए.वी. संस्थाओं द्वारा शिक्षा-क्षेत्र में की गई सेवाओं की प्रशंसा की।

गुरुकुल के वार्षिकोत्सव की अध्यक्षता करते हुए आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए.वी. कालेज मैनजिंग कमेटी के प्रधान श्री पूनम सूरी ने डी.ए.वी. परिवार की ओर से श्री अमित शाह का अभिनन्दन किया और उनको डी.ए.वी. की जीवनशैली नाम की नव प्रकाशित पुस्तक भेंट की। श्री सूरी जी ने इस अवसर पर बताया कि 'नारी शिक्षा और सुरक्षा' के प्रति समर्पित डी.ए.वी. ने राजौंद में लड़कियों के लिए विद्यालय तथा यमुनानगर में महिला यूनिवर्सिटी बनाये जायेंगे।

इस वार्षिकोत्सव पर हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल महामहिम आचार्य देवव्रत जी भी उपस्थित थे। इस अवसर पर हरियाणा के मुख्यमंत्री मानवीय श्री मनोहर लाल जी खट्टर भी उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त इस समारोह में डी.ए.वी. विद्यालयों के प्राचार्यों शिक्षकों और अधिकारियों ने बड़ी संख्या में उपस्थित होकर इसे सफल बनाने में पूरा सहयोग दिया।

www.thearyasamaj.org

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-११-२०१६ को प्रकाशित।